अमृत-वाणी

स्वामी लीलाशाह महाराज



भेंट [१५ रुपये] 20 १९९४ [प्रथम संस्करण

प्रकाशक
आत्म दर्शन प्रकाशन मण्डल
नवाब का बेड़ा, अजमेर

AMRIT - VANI

(Swami Lilashah Maharaj)

Translated by :

Deepchandra Belani M. A., Prabhakar

First Edition : August 1994

20

Price : Rs. 15/-

Copies : 2000

Published by :

Atma Darshan Prakashan Mandal

Nawab ka Bera, AJMER-305001.

Printed by :

CHETAN M. RAICHANDANI

Amar Bharat Printing Press

Hathi Bhata, AJMER.

भूमिका

बहुत कम लोग इस संसार में आते हैं, जो अपने जीवन में हजारों क्या लाखों मनुष्यों के प्रिय एवं पूज्य बन जाते हैं और उनके चरित्र पर गहरी छाप अंकित कर जाते हैं। स्वामी लीलाशाह महाराज ऐसे पुरुषों में प्रमुख थे।

उन्होंने गरीब घर में जन्म लिया, स्कूली शिक्षा नाम मात्र की ली, कोई मठ मन्दिर स्थापित नहीं किया और न किसी गद्दी पर बैठे, किन्तु अपने त्याग, तपस्या, सेवा, नम्रता और अनुभव के आधार पर आगे और आगे बढ़े। गृह रहित होते हुए सब जगह उनका गृह था। शिक्षाविद न होते हुए भी ज्ञान के सागर थे, लक्ष्मी उनके चरणों में लोटती थी। वे लक्ष्मी दास न बनकर, लक्ष्मी पति बने रहे, जो धन श्रद्धालु सज्जन भेंट में देते थे, वह अपने पास नहीं रखते थे। किन्तु दरिद्र लोगों, विधवाओं, गरीब विद्यार्थियों, बीमारों व अन्य उपकार के कार्यों के लिए उदारता से देते रहते थे।

श्रद्धालुओं के द्वारा धन की वर्षा होते हुए भी वे अपने शरीर पर अत्यन्त कम व्यय करते थे। शरीर पर वही खादी का चोगा, सर पर कपड़े का टुकड़ा बंधा हुआ और नीचे कछा! दिन में एक समय सादा भोजन करते थे, लेकिन खाना खाने में पर्याप्त समय लेते थे। खाना खूब चबा चबा कर खाते थे, सोने के लिए उन्हें नरम बिस्तर भी नहीं होता था और प्रायः टाट बिछाकर उस पर सोते थे।

सिन्ध में रहते हुए स्वामी जी ने किसी एक स्थान पर ठिकाना नहीं किया, रटन ही करते रहते थे। दूर-दूर के गांवों में जाकर पहुंचते थे और प्रायः नगर अथवा गांव से

बाहर रहना पसन्द करत थे। कहते थे कि- "गुदड़ी मेरे कन्धे पर और रोटी राज्य पर है।"

देश के बंटवारे के पश्चात् भारत में आये तो रटन करते करते समस्त भारत के कोने कोने में जाकर पहुंचते थे और जिज्ञासुओं और श्रद्धालुओं को घर बैठे दर्शन देकर प्रसन्न करते थे। भारत में आने के पश्चात् तीन बार विदेशों में भी गए और अमृत रूप वचनों की वर्षा करके आये।

स्वामी जी का शरीर हल्का-फुल्का था, उनमें बहुत चुस्ती थी। चलते थे तो दूसरों को दौड़ना पड़ता था। योग आसनों और योग क्रियाओं में प्रवीण थे। बड़ी आयु होते हुए भी कठिन से कठिन आसन सरलता से करते थे और लोगों को भी उनके करने की प्रेरणा देते थे। वे महान योगीराज थे।

स्वामी जी के गुणों की कहां तक प्रशंसा की जाय! उनमें सहस्त्रों गुणों का समावेश था, उनके वर्णन करने की इस कमज़ोर कलम को शक्ति नहीं है। वे गुणों के भण्डार थे। इसलिए ही विभिन्न विचार रखने वाले भी उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

स्वामी जी की बड़ी विशेषता थी कि वे कथनी और करनी में समान थे। कहने और करने में कोई भेद न रखते थे। दिखावे, पाखण्ड का उनके पास नाम भी नहीं था। भीतर बाहर एक जैसे थे। कहते थे कि प्रत्येक को कर्मयोगी होना चाहिये, क्योंकि निष्काम कर्म से अन्तःकरण शुद्ध होता है। स्वामी जी का कर्म क्षेत्र अत्यन्त विशाल था। धार्मिक, सामाजिक और आत्मिक क्षेत्र अर्थात् प्रत्येक क्षेत्र में कार्य किए। वे मानों एक चलती-फिरती संस्था थे, जिसके द्वारा अनेक कार्य होते रहते थे।

वे बहुमुखी ही थे। स्वामी जी मानो एक विशाल वृक्ष की नाईं थे। जिसकी छाया में सहस्त्रों और लाखों विश्राम कर रहे थे। जहां जाते थे, वहां पाठशालाएं, धर्मशालाएं, व्यायामशालाएं और गौशालाएं खोलने की प्रेरणा देते थे, उनके द्वारा गरीब विद्यार्थियों को मासिक मनीआर्डर जाते थे, विधवाओं को सहायता मिलती थी। बीमारों को दवा के साथ आशीर्वाद मिलता था, कन्याओं के विवाहों में सहायता करते थे और दहेज के विनाश के कारण उसके विरुद्ध उन्होंने आंदोलन चलाया। केवल प्रवचन नहीं करते थे। किन्तु जिज्ञासुओं की व्यक्तिगत उन्नति में भी रुचि रखते थे। उनके गुणों और कार्यों का कहां तक वर्णन किया जाय। उनकी महिमा वर्णनातीत है। अतः आज भी लोग उनके नाम पर बलहार जाते हैं और उनके प्रिय कार्यों को आगे बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

हमें उनके जय-जयकार करने में ही प्रसन्न नहीं होना चाहिये परन्तु हमारी यथार्थ श्रद्धांजली तब समझी जाएगी, जब उनके बताए हुए मार्ग अनुसार अपनी और दूसरों की उन्नति करने में यथा शक्ति लग जायेंगे और अपना जीवन आदर्श और सुन्दर बनायेंगे।

ऐसे महानपुरुष के प्रवचनों को हम "अमृत-वाणी" समझते हैं। हमारी ओर से सिन्धी में "स्वामी लीलाशाह दर्शन" १९७५ ई. में छपाया गया था, जिसमें श्रद्धांजलियों के अतिरिक्त स्वामी जी के लगभग दो सौ प्रवचन भी दिये गये थे, जो स्वामी जी के विभिन्न नगरों में दिये गये थे। इस पुस्तक की एक भी प्रति बेचने के लिए हमारे पास नहीं है।

हिन्दी भाषी (सिन्धी अथवा हिन्दी श्रद्धालु) भाइयों का आग्रह था कि स्वामी जी के प्रवचन हिन्दी में भी प्रकाशित किए जायं ताकि हम भी लाभ उठा सकें।

श्रद्धालुओं की मांग उचित समझकर समय निकाल कर मैंने स्वामी जी के प्रवचनों का सिन्धी से हिन्दी में अनुवाद किया, अनुवाद चाहे प्रूफिंग आदि का मैंने कभी कोई पारिश्रमिक नहीं लिया है और सेवा भाव से ही कार्य किया है।

मुझे विश्वास है कि प्रेमी इस पुस्तक के प्रचार में भी सहयोग करेंगे, जैसे उन्होंने "स्वामी लीलाशाह वाणी" हिन्दी संस्करण में दिया है। जिसमें स्वामी जी के वर्ष के प्रतिदिन के लिये अमूल्य विचार दिये गये हैं, उस पुस्तक के चार संस्करण निकल चुके हैं।

१२-६-६४ }
अजमेर }

दीपचन्द्र बेलाणी

विषय सूची

स्वामी लीलाशाह महाराज

१९५४ में बम्बई में समुद्र के तट पर खींचा गया चित्र



سوامي ليلاشاھ مھاراج

١٩٥٤ع ۾ بمبئي سمنڊ جي ڪناري نڪتل فوٽو

अमृत वाणी

स्वामी लीलाशाह महाराज

(१)

दुनिया मुसाफिरखाना*

"काहे एक बिना चित्त लाईये?
ऊठत बैठत सोवत जागत, सदा सदा हरि ध्याईये ।"

हे भाई ! एक परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी से क्यों चित्त लगाता है ? उठते बैठते, सोते जागते तुझे सदैव ध्यान करना चाहिये । यह समस्त दुनिया तो एक मुसाफिर-खाना (सराय) है । मुसाफिरखाने में कई चीजें रखी रहती हैं तो उनमें से मुसाफिर केवल काम निकाल सकता है, किन्तु उन्हें वह ले नहीं सकता । इसी प्रकार इस संसार के पदार्थ काम निकालने के लिए हैं, लेकिन उनमें आसक्ति रखकर अपना जीवन भ्रष्ट करने के लिए नहीं है ।

---

* १५ जनवरी १९५७ पर आगरे में किया गया प्रवचन ।

सपने के संसार पर, क्यों मोहित किया मन मस्ताना है?
घर मकान महल न अपने, तन मन धन बेगाना है,
चार दिनों का चैत चमन में, बुलबुल के लिए बहाना है,
आई खिजां हुई पतझड़, था जहां जंगल, वहां वीराना है,
जाग मुसाफिर कर तैयारी, होना आखिर रवाना है,
दुनिया जिसे कहते हैं, वह तो स्वयं मुसाफिरखाना है।

कर्त्तव्य का पालन:– हम दुनिया में माल खजाना इकट्ठा करने के लिए नहीं आये हैं। न विलासता में अपनी अमूल्य देह गंवाने आये हैं। हम आये हैं अपने कर्त्तव्य पालन के लिए। कर्त्तव्य पालन ही हमारा परम धर्म है। उसी में ही हमारा सच्चा मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक सुख निहित है। सदैव उद्यम करते रहना चाहिये, फिर काम हो अथवा नहीं। सन्त के पास चलें अथवा नहीं, सन्त सत्संग करेगा अथवा नहीं, लोग थोड़े आएंगे अथवा बहुत, चलें तो देर न हो जाय आदि बातें विचारना यह सब मन की मस्ती है। इसी मन ने तुम्हें ८४ लाख योनियों में भटकाया है। अत: फिर भी उसके कहने पर लगकर एक बार गफलत दिखाओगे तो उसके जाल में फंस जाओगे और तत्पश्चात् वह तुमसे अयोग्य काम कराकर फिर भी रहट की लोटियों की तरह तुम्हें योनियों के चक्र में भटकाता रहेगा।

काम पूर्ण हो अथवा नहीं, कथा सन्त करे अथवा नहीं, लोग आवें अथवा नहीं, इन बातों से तुम्हारा क्या! तुम्हारा धर्म है उद्यम करके अपने कर्त्तव्य का पालन करना। तुम अपनी नीयत निर्मल रखो और कदापि निराशा को भीतर चित्त में आने न दो। विभिन्न स्थानों पर एक महान शक्ति है, जो स्वयमेव ही काम कर रही है। घड़ी को थोड़ा चाबी

देने से कैसे न सेकण्ड और मिनट कांटे तथा घण्टा कांटा स्वयं ही चलते रहते हैं। इस प्रकार प्रकृति भी अपना कार्य स्वयं ही करती रहेगी, तुम केवल उद्यम करते रहो फल की इच्छा न रखो।

किसान का काम है उद्यम करके, झाड़ झंखाड़ काटकर खेत को पानी सींचकर हल देकर, बीज छिटकारना। थोड़े समय के पश्चात् स्वयं ही अंकुर उगते रहेंगे। अंकुर उगने के पश्चात् भी किसान का काम है, उसकी अच्छी तरह देखभाल करते रहना। फिर देखो तो कैसे न खेत में भुट्टे निकलते हैं और अन्न के भंडार इकट्ठे होते हैं। जो किसान केवल सोचता रहता है कि कैसे करूं? अन्न बोऊ, फिर अन्न होगा अथवा नहीं इत्यादि। तो फिर कुछ न होगा। किसान की मनोकामनाएं कदापि पूर्ण नहीं होंगी। उसी प्रकार हमें भी चाहिये कि सदैव अपना कर्त्तव्य पालन करते रहें, व्यर्थ सोच विचार छोड़कर चित्त सर्वदा प्रसन्न रखें।

"दादू दावा छोड़ दी बिना दावा दु:ख कट।"

यह समय हमारी परीक्षा का है। अनुकूलता में प्रत्येक दिल लगाकर काम करता रहता है, किन्तु मर्द वह है, जो प्रतिकूलता का भी सामना करे। शाह साहब का वचन है:–

दु:ख सुखनि जो सूंह्र, घोरिया सुख दु:खनि रीअ।

भावार्थ :– दु:ख सुखों की शोभा हैं। दु:खों के सिवाय सुख भी नहीं चाहिये।

अध्यापकों का दण्ड सहन करके ही फिर अध्यापक का पद प्राप्त कर सकते हो। वह सवार ही नहीं होगा, जिसने धका न खाया होगा। जिसका व्यवहार श्रेष्ठ, उसका परमार्थ भी श्रेष्ठ होता है। यह सच है कि दुनिया के संग में मन दु:खी होता है, पर उसका साधन भी अवश्य होगा।

कमरे में कितना भी अन्धकार हो, परन्तु प्रकाश आने से तत्काल सेकण्ड में वर्षों का अंधेरा गायब हो जाता है। शरीर में दर्द हो तो उसे मालिश से दूर किया जा सकता है। यदि भूख व्याकुल करे तो भोजन खाने से तृप्ति प्राप्त की जा सकती है। सचमुच वीरता परीक्षा के समय है। दुःखों में ही हमारी सच्ची परीक्षा होती है।

"सुख में आन बहुत मिल बैठत, रहत चौदिश घेरे,
वक्त पड़े सभी संग छाडत, कोऊ न आवत नेरे।"

सुख में सब कोई साथ में रहेगा, पर अच्छा तभी है, जब कोई दुःख में साथ दे। काम पड़ते ही मर्द की कद्र होती है। तुम्हारा काम है कर्त्तव्य पालन करना। तुम केवल निमित कारण हो। महात्मा गांधी सब कार्य परमात्मा की ओर से समझता था। जय पराजय सब ईश्वर की ओर से समझता था। वह सदैव कहता था कि मैं तो निमित कारण हूं, मेरा इसके लाभ से क्या प्रयोजन?

पराधीनताः– इन्द्रियां मन को अपने अपने विषयों की ओर खींचती हैं। प्रत्येक इन्द्रिय का प्रवाह वायु के प्रवाह से भी कई गुना अधिक है। इस विषयों रूप प्रवृत्ति रूप प्रवाह से मन क्षण में एक ओर आकर्षित हो जाता है तो दूसरे क्षण में दूसरी ओर आकर्षित हो जाता है। इन्द्रियों के विभिन्न विषयों में इस प्रकार खींचा हुआ मन एक जगह स्थिर नहीं रह सकता है और सदैव चंचल बना रहता है। यह मन की पराधीनता है। सब प्रकार की पराधीनता या वश रहित होना दुःख का कारण है। जो इन्द्रियों के वश में होकर विषयों के पीछे पड़ा हुआ है, वह पराधीन ही है। पराधीन का अर्थ है शत्रु के अधीन अथवा वश में होना। फिर कौन

है, जो शत्रु के वश में होकर सुख भोगने की अभिलाषा कर सकता है?

तृष्णा जहां, वहां ही जान ले संसार है,
होवे नहां तृष्णा जहां, संसार के वह पार है,
वैराग्य पक्का धार कर, मत भूल विषयासक्त हो,
तृष्णा न कर, हो जा सुखी, मत भोग में आसक्त हो।

पराधीन होने वाले को सदैव दुःख प्राप्त होता है। अतः प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि वह अपने मन को सदैव वश में रखे। जिसकी इन्द्रियां विषयों से हर प्रकार निवृत्त होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर, शान्त और गंभीर रहती है और उसे ही सब सुख प्राप्त होते हैं। इन्द्रियों को बिलकुल स्वच्छन्द कर देने से अपनी शक्ति क्षीण होती है और इसी निर्बलता के कारण मनुष्य को दुःख भोगना पड़ता है। किन्तु जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को संयम में रखता है और इन्द्रियों को स्वच्छन्द न करके अपने वश में रखता है अर्थात् उन्हें अपनी इच्छा अनुसार चलाता है और उन्हें विषयों के जंगल में भटकने नहीं देता है, उसकी शक्ति उसके भीतर ही रहती है। इस अपनी विशेष शक्ति से व्यक्ति परम सुख प्राप्त करता है। शक्ति की अधिकता सुख है। यदि किसी को सुखी होना है तो वह अपनी विशेष शक्ति से ही होगा। दूसरे से प्राप्त शक्ति से सुख कभी प्राप्त न होगा।

अतः जो व्यक्ति सुख का इच्छुक है, उसे मन को विषयां से हटा करके, अपने वश में रखने का उद्यम करना चाहिये।

आत्मा रथवान हैः– शरीर आत्मा का रथ है। बुद्धि सारथी अर्थात् कोचवान है और मन लगाम है। इन्द्रियों रूप घोड़े, इस रथ में बंधे हुए हैं, जो अपने विषय रूप मार्ग में जाने की वृत्ति रखते हैं।

जो व्यक्ति ज्ञान रहित होता है और जो अपने मन को योग से शांत नहीं करता है, उसकी वे इन्द्रिय उसके वश में नहीं रहतीं। उसकी दशा ऐसी भयानक होती है, जैसी नये सीखने वाले घोड़ों वाले रथ में बैठे हुए किसी रथवान की होती है। किन्तु जो ज्ञानी है और जो योग से अपने मन को वश में करता है, उसकी इन्द्रियां उसके वश में रहती हैं और उसे सुख प्राप्त होता है। जो व्यक्ति स्वयं ज्ञानी है और मन को अपने वश में रखता है और पवित्र रहता है, वह इस पद को प्राप्त करता है। यहां से फिर गिरना नहीं पड़ता अर्थात् जन्म मृत्यु से छूट जाता है। जिसका सारथी ज्ञानवान है, जिसका मन रूप लगाम अपने वश में है, वही रास्ता पार कर जाता है और भगवान का परम पद अर्थात् श्रेष्ठ आनन्द का स्थान प्राप्त करता है, किन्तु मनमुख अर्थात् पराधीन मनुष्यों को सर्वदा दुःखी ही रहना पड़ता है। "पराधीन सपने सुख नाहीं।"

आत्मिक नशाः– एक व्यक्ति भालू का पार्ट करने लगा, उसे अधिक भांग पिलाई गई थी। उसे कोई होश नहीं रहा। वह सचमुच स्वयं को भालू समझकर लोगों को खाने लगा। जब उसे खटाई खिलाई गई, तब होश में आया। तत्पश्चात् सावधान हुआ और की गई मूर्खता पर पछताने लगा। उसी प्रकार हमें अज्ञान रूप नशा चढ़ा हुआ है। हम स्वयं को देही समझ बैठे हैं। जब वह नशा उतरेगा, तब हमें आत्मिक ज्ञान आयेगा।

भक्ति किसकी:– एक प्रेमी शंकर भगवान की भक्ति करता था। एक दिन उसने शंकर भगवान की मूर्ति पर एक चूहा चलते हुए देखा। उसे मन में विचार आया कि हां! शंकर भगवान से चूहा बड़ा है। वह चूहे का उपासक बन गया। कुछ दिनों के पश्चात् उसने देखा कि बिल्ली चूहे को खा गई। तत्पश्चात् वह बिल्ली को बड़ा मानने लगा। फिर एक दिन उसने कुत्ते को देखा कि बिल्ली को मार रहा है। फिर वह कुत्ते में श्रद्धा रखने लगा। फिर एक दिन उसने देखा कि उसकी पत्नी कुत्ते को मार रही थी। तत्पश्चात् वह पत्नी की पूजा करने लगा। पत्नी पर एक दिन उसने क्रोध किया। क्रोध करते समय उसे विदित हुआ कि हां! मैं स्वयं पत्नी से भी उत्तम हूं। फिर अपनी उपासना करने लगा। ऐसा समझने लगा कि सबमें स्वयं मैं हूं। अन्त में शुद्ध संकल्प करने से उसे आत्मिक बोध होने लगा और स्वयं को सबका साक्षी सच्चिदानन्द समझने लगा। ऐसा करते करते परम शान्ति को प्राप्त हुआ।



(२)

दुर्ग पर कब्जा कीजिये*

जिसको स्वर्ग अथवा सुख न चाहिये, वह हाथ उठाए। किसी ने भी हाथ नहीं उठाया। हां, तुम में से कोई भी ऐसा नहीं है, जो स्वर्ग के मजे भोगना नहीं चाहता। प्रत्येक सुख भोगने का इच्छुक है। किन्तु यदि सुख भोगना चाहते हो तो दुर्ग पर कब्जा कीजिये। कौन सा दुर्ग? यह मन, बुद्धि और इन्द्रियों रूप दुर्ग है। उसको अपना दास बनाईये। ऐसा न हो कि तुम उनके गुलाम होकर, अपना अमूल्य जन्म नष्ट कर दो।

धिकार है उस अर्थ (धन को, धिकार है उस कर्म को,
धिकार है उस काम को, धिकार है उस धर्म को,
जिससे न होवे शान्ति, उस व्यापार में क्यों आसक्त हो?
पुरुषार्थ अन्तिम सिद्ध कर, मत भोग में आसक्त हो।

ताला यदि सन्तरी के हाथ में है तो वह कैदी को भीतर बन्द कर सकता है अथवा बाहर निकाल सकता है। वह स्वामी है, किन्तु कैदी बिचारा पराधीन है। वह भीतर बन्द है, उसका कोई वश नहीं चलता।

एक दरवेश राजदरबार में गया। वहां वह इधर उधर देख हंसने लगा। मन्त्री ने आकर दरवेश को कहा कि "स्वामी! यह राज दरबार है, आप यह क्या कर रहे हैं?

* २६ जनवरी १९५७ पर आगरे में किया गया प्रवचन।

देखते नहीं हो कि स्वयं बादशाह सलामत दरबार में बराजमान हैं।"

दरवेश ने मन्त्री को कहा कि "हां, अच्छा, राजा से एक बात पूछ कर आओ कि मन आप का गुलाम है अथवा आप मन के गुलाम हो?"

मन्त्री ने जाकर बादशाह से पूछा। बादशाह ने लज्जित होकर कहा, "मन्त्री! कैसी बात पूछते हो, मैं तो मन का गुलाम हूं।"

मन्त्री ने यह बात आकर दरवेश को बताई। दरवेश ने सुन कर मुस्करा दिया और खूब ठहाके मारने लगा। कहा, "तुम्हारा बादशाह तो मेरे गुलाम का भी गुलाम है। मन तो मेरे वश में है। वह विकलांग की भांति कुछ नहीं कर सकता। यह बादशाह तो नहीं हुआ, वह तो पराधीन हुआ। घोड़े की लगाम यदि सवार के हाथ में नहीं है तो फिर पता नहीं कि सवार का क्या हाल हो। वह आखिर उसे घुमा घुमा कर ऐसे गड्डे में फेंकेगा, जहां से उसका निकलना ही कठिन हो जाएगा।

ये शब्द मन्त्री ने जाकर बादशाह को सुनाये। बादशाह तत्काल आकर दरवेश के शरण में पड़ा। दरवेश ने उस पर दया-दृष्टि की और उसे बोध देकर भवसागर से पार किया।

मन को सदैव अपने वश में रखो। मन कोई सुन्दर नारी देखता है तो उस में बुरी कामना उत्पन्न होती है। उसे बदलने के लिए नीचे देखो। आंखें बन्द करके, उसे कहो कि अब देखो। वह देख नहीं सकेगा। मन इस प्रकार मुर्दा बन जाएगा। पहले इन्द्रियों को अधिकार में रखो तो फिर स्वतः मन और बुद्धि पर कब्जा रहेगा।

मन का स्वभाव:- एक प्रेमी स्वामी जी के पास आया। स्वामी जी ने आदर सत्कार करके उसे बिठाया। उससे पूछा "सज्जन, कर खबर! कुछ नाम जपते होंगे। मन की अवस्था बताओ।"

उसने कहा- "स्वामी जी, मन बड़ा चंचल है।"

स्वामी जी ने कहा- "मन का वास्तविक यह रूप नहीं है। वह तो जड़ पदार्थ है। मन तो मनन को कहते हैं। जैसे जैसे संकल्प होंगे, मन का वही रूप होगा। वास्तव में मन का चंचल स्वभाव नहीं है। पानी को जिस बर्तन में डालेंगे, वह वैसा आकार धारण करेगा। पानी में जैसा रंग डालोगे, वह वैसा रूप दिखाएगा।

मन भी इस प्रकार है। मन पर अधिकार कीजिये। जिस ओर चिल्लाए, उस ओर ज्ञान का अंकुश डाल दीजिये।

मन में चंचलता आई कहां से? वह उस में स्वाभाविक नहीं है। निमित्त कारण है। उस में तामसी तथा राजसी विचार भरे हुए हैं। वे निकालने चाहिये। मन पर अज्ञान के पर्दे चढ़े हुए हैं- (१) मल (२) विक्षेप (३) आवरण। ये तीनों दूर करने हैं। जब ये पदार्थ दूर होते हैं, तब मन निर्मल होता है, बुद्धि सात्विक होती है, अन्तःकरण में प्रकाश उत्पन्न होता है और उस में सच्चे आनन्द का मजा आता है।

पहले संकल्प शुद्ध रखिये। कोई भी बुरा संकल्प भीतर आया तो समझो कि शत्रु ने अपना पड़ाव डाला। उसे भीतर मन-मन्दिर में घुसने न दीजिये। नहीं तो अवसर पाकर डाका डालकर भिखमंगा कर जायेगा। अतः आरंभ से सावधान रहिये। हर समय छोटे बच्चे की भांति उस पर

चौकसी रखिये। कभी अशुभ वचन मुख से न निकालो। अशुभ वचन बोलने से बुद्धि मलीन होती है। गुरु साहिबों को देखो कि कैसा न अमूल्य वचन है! उस में देखिये कि कितना न आनन्द भरा हुआ है।

मुखिया कौन? :- मुखिया किसे कहते हो? मुखिया शब्द मुख से निकला है। जिस प्रकार मुख सब अंगों में श्रेष्ठ है। वह कार्य करना बन्द कर दे तो सभी शरीर के अंग निकम्मे हो जायं। उसी प्रकार मुखिया भी एक पूज्य, सदाचारी, श्रेष्ठ सज्जन पुरुष है। मुख के दो कार्य हैं- एक खाना और दूसरा बोलना। खाने और बोलने का एक समान द्वार है। सच्चा मुखिया भी वह, जो सोच विचार करके बोले। किसी का पैसा भी न खाए।

बुद्धिमान मनुष्य वह, जिसका मुख दिल में हो अर्थात् सोच करके बोले। मूर्ख वह, जिसका दिल मुख में हो अर्थात् जो उसे आवे, वह कह दे।

ठीक आप भी अगर शुभ संकल्प मन में धारण करेंगे और अशुभ वचन मुख से न निकालोगे, सोच समझ कर चलेंगे तो पौ बारह है। आप से स्वयं ही शुभ काय होते रहेंगे। फिर तो आप का बाल भी बांका न होगा। जिधर जाओगे, उधर आपका यश होगा। प्रत्येक आपको चाहता रहेगा।

तुम्हारे हृदय में उमंग, प्रेम, उत्साह, प्रसन्नता एवं भलमनसाहत की लहरें उत्पन्न होती रहेंगी। तुम्हारा फिर ऐसे अयोग्य कार्य करने पर दिल ही न होगा, जिससे अन्य को कोई हानि पहुंचे अथवा तुम्हारा मन उदास रहेगा।

गांधी महाराज का नाम भारत देश तो छोड़ो, परन्तु समस्त विश्व में क्यों प्रसिद्ध है? क्यों सारा संसार आज दिन तक उनकी बरसियां मना रहा है? क्या शक्ति में तुमसे सबल थे? क्या वे महलात में रहते थे और बहुमूल्य वस्त्र पहनते थे? क्या उनके पास बन्दूकें तोपें थीं? क्या वे अपने साथ पहरे वाले लेकर चलते थे, जो उन पर रात दिन पहरा देते थे? क्या वे जोर जबरदस्ती से प्रजा में स्वयं को पुजवाते थे? कदापि नहीं। वे तो सबके मित्र थे, सबसे भलाई करते थे और सदैव उनके मन में उमंग तथा उत्साह होता था। कोई भी, किसी भी समय उनके पास जाता था तो वे उसका हार्दिक आदर सत्कार करके, उसे हर प्रकार की सहायता करते थे वे सत्यवादी थे और अन्त समय तक सत्य के लिए लड़ते रहे। तुम भी शुद्ध कार्य करोगे तो तुम्हारा नाम भी अजर अमर रहेगा।

ज्ञान मुक्ति का साधनः– आत्मा परमात्मा की एकता यही ज्ञान मुक्ति का साधन है, तुम क्षत्रज्ञ हो। तुम सूर्य के समान हो। तुम स्वामी हो न सेवक, उंगली ऊपर उठा सकते हो और फिर नीचे उतार सकते हो। मन की क्या शक्ति है? निष्काम कर्म करो, हृदय रूप गुफा में कचरा (गंद), चूहों के बिल और अंधकार है। परन्तु कचरा कैसे जाय? झाड़ू लगाने से। बिल कैसे बंद किये जायं? पत्थर तथा कांकरीट लगाने से। अंधकार कैसे नष्ट हो? प्रकाश से! प्रकाश करने से विचार शुद्ध रखो। संकल्प विकल्प रखना है झाड़ू लगाना। पांच चोरों काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार से स्वयं को बचाना है, बिलों को बन्द करना और ज्ञान का प्रकाश करना है अविद्या रूप अन्धकार को हटाना।

कोई भी बालक लालटेन लेकर भीतर अन्धेरी गुफा में जाएगा तो प्रकाश हो जाएगा। जब यह दिव्य दृष्टि उत्पन्न होगी तो फिर देर ही नहीं, तुम स्वयं वह जगमग न बुझने वाली ज्योति हो। जैसे सूर्य से उत्पन्न बादल सूर्य को कुछ समय के लिए ढक देते हैं, वैसे तुम पर भी अविद्या का पर्दा चढ़ गया है। चारों ओर प्रकृति पर दृष्टि डालिए। सूर्य सब पर प्रकाश करता है। वह किसी को बुलाता नहीं। वह अपनी अडिग वृत्ति में पूरा है। अपने आपमें समाया हुआ है।

सत्संग करो, भलाई के काम करो। किसी का बुरा न चाहो। तुम क्या यह चाहते हो कि कोई तुमसे कड़वा बोले? क्या तुम यह चाहते हो कि कोई तुमसे विश्वासघात करे? क्या तुम चाहते हो कि कोई तुम्हारा अधिकार हड़प कर जाय? कदापि नहीं। तो फिर तुम भी दूसरों से इस प्रकार चलो, जिस प्रकार तुम चाहो कि दूसरे लोग तुम्हारे साथ चलें। बस, यही ज्ञान मुक्ति का साधन समझो।



(३)

सुधार का मार्ग*

महापुरुषों का संगः— सागर का पानी खारा होता है। वही पानी सूर्य के ताप के कारण साफ होकर ऊपर जाता है और बादलों का रूप ग्रहण करता है। सरदी लगने से वह वर्षा होकर बरसता है। वह खारा पानी नहीं होता किन्तु मीठा। सागर के पानी वाला खारापन सूर्य के ताप से उसमें से निकल जाता है। इसी प्रकार यह संसार खारा अर्थात् दुख रूप भासता है, किन्तु ब्रह्मनेष्ठी और ब्रह्मश्रोत्री महापुरुषों के संग में रहकर, सत्शास्त्रों के श्रवण, मनन, निद्ध्यासन करने से वह सुख रूप भासता है।

मन और दुःखः— दुःख कब सताता है, जब मन में प्रतीत होता है। जब मन प्रतीत न करे तो भासेगा ही नहीं। क्लोरोफार्म देने से चीर फाड़ करते हुए भी दुःख क्यों नहीं भासता? क्या दुःख का लोप हो जाता है। शरीर में दुःख तो वैसे का वैसा रहता, लेकिन मूर्च्छा के कारण मन दुःख प्रतीत नहीं करता। दुःख सुख का निर्भर तो विचार पर है, छोटा बच्चा रक्त की बूंद देखकर घबरा जाता है। डाक्टर को दूर से अपनी ओर आता देखकर चिल्लाता है। डाक्टर उसे हाथ लगाता है तो रोता है। वह दुःख उसे उसके ही

* १५ जून १९५७ पर नैनीताल में किया गया प्रवचन।

अपने विचार पहुंचा रहे हैं। हम जब यह वास्तविकता जानकर, दुःख सुख के साक्षी होकर संसार में चलेंगे, तो कदापि दुःखी नहीं होंगे।

भ्रमः— एक लड़के को उसके पिता ने कहा कि "भीतर कमरे में जाकर देख आओ कि कितने व्यक्ति सत्संग सुन रहे हैं और कितने व्यक्ति उपदेश कर रहे हैं।" वास्तव में एक उपदेशक और पच्चास सत्संगी बैठे थे, किन्तु वे शीश महल में बैठे थे। चारों ओर दीवारों को आईने लगे हुए थे। लड़के ने आदमी तो देखे, किन्तु उनके साथ आईनों में उनका प्रतिबिम्ब भी देखा। वह गिनती करके अपने पिता के पास गया और उसे बताया कि पिताजी, दो उपदेशक और एक सौ सत्संगी बैठे हैं। उसका पिता समझ गया कि वास्तविकता क्या है, कुछ बोला नहीं। जब आदमी चले गए, तब बेटे को भीतर ले गया और उसे कहने लगा कि "देखो यहां कितने लड़के हैं?" उत्तर दिया कि "दो"। उसके बाप ने कहा कि "भला उस लड़के को इधर बुला लो।" लड़के ने बहुत यत्न किया कि उसे पकड़ लूं, किन्तु दूसरा हो तो उसे पकड़े।

अन्त में आईने को चोट लगाई तो वह टूट गया और दूसरा लड़का भी दिखाई नहीं दिया। तब अपने पिता को कहा कि "दूसरा लड़का तो है ही नहीं, मैं एक ही हूं।" तब उसके पिता ने कहा "वह तुम्हारा प्रतिबिम्ब आईने में था और उपदेशक भी जो तुझे दो देखने में आये थे, वे भी दो नहीं थे। सत्संगी भी सौ नहीं थे, किन्तु पचास थे, जिनका प्रतिबिम्ब तूने आईनों में देखा था।"

इसी प्रकार संसार में ये सब एक के ही प्रतिबिम्ब हैं। तुझसे भिन्न अन्य वस्तु है ही नहीं। भ्रांति के कारण ही यह नानात्व प्रतीत हो रहा है।

उल्लूओं की पंचायत एकत्रित हुई। उन्होंने एक दूसरे से पूछा कि तुम में से किसी ने सूर्य देखा है। भला उनमें से किसी ने सूर्य देखा हो तो हां कहे। उन्होंने कहा कि सूर्य होता ही नहीं है। वही दशा अज्ञानी लोगों की है। वे ईश्वर के लिए कहते हैं कि ईश्वर है ही नहीं। वे संसार को सत् समझ रहे हैं।

अपने आपको भूल के, हैरान हो गया।
माया के जाल में फंसा बेरान हो गया।

मन की गतिः– एक शिष्य ने अपने गुरू से पूछा कि स्वामी जी, आपका मन आपके वश में है? गुरू ने उत्तर दिया कि बेटे कल पूछना। दूसरे दिन शिष्य ने गुरू से वही प्रश्न किया। गुरू ने फिर वही उत्तर दिया कि 'कल पूछना।' इस प्रकार प्रतिदिन वही उत्तर देता रहा। अन्त में गुरू के अन्तकाल का समय आ गया, तब शिष्य ने गुरू को हाथ जोड़कर विनती की कि "मुझे आज तक आपने उत्तर नहीं दिया है। अब तो कृपा करके बताइये।"

तब गुरू ने कहा– "बेटा, हां मेरा मन मेरे वश में है। अब तक तुझे मैं उत्तर नहीं दे रहा था, क्योंकि मन पर विश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह किसी भी समय धोखा दे दे तो फिर झूठा प्रमाणित होना पड़े। अब जब मैं संसार से विदा ले रहा हूं, तब कह सकता हूं कि मन मेरे वश में है।"

मन की गति अटपटी, झट पट लखे न कोय,
मन की खट पट जे मिटे, तो चट पट दर्शन होय।

महापुरुषों का दिलः– स्वामी राम तीर्थ अमेरिका में रटन करते हुए एक ऐसे स्थान पर जा निकले, जहां पास

वाले गढ़े में एक पिल्ला डूब रहा था। दो लड़के टेनिस खेलने जा रहे थे। उन्होंने यह दृश्य देखा। एक को दया आई, अतः उसे निकालने के लिए बढ़ने लगा। दूसरा उसे कहने लगा कि भाई टेनिस को देर हो रही है, छोड़ दे इसको। चलो तो खेल पर चलें। किन्तु पहला लड़का नहीं हटा। वस्त्रों सहित गढ़े में कूद पड़ा और पिल्ले को बाहर निकाल लाया। साथी ने उसे कहा– "कुत्ते के लिए तूने अपने अमूल्य कपड़े खराब कर दिये।"

उसने उत्तर दिया– "कुत्ते को डूबते हुए देखकर मेरा दिल दुःखी होने लगा। यदि उसे न निकालता तो मेरा भोजन विष हो जाता और बार-बार कुत्ते की याद आती। उसको जीवन दान देने से मेरे दिल को प्रसन्नता पहुंची है। ऐसा कहकर वह लड़का खेल पर जाने के बदले कपड़े बदलने के लिए घर लौट गया।

सचमुच सत्पुरुषों का हृदय उस लड़के की भांति मोम जैसा कोमल होता है। वे दूसरों को देखकर स्वयं दुःख अनुभव करते हैं और दूसरों के सुख में सुख अनुभव करते हैं। ऐसे सत्पुरुष ही परोपकारी कहलाते हैं।

विकारों से बचोः– दो नाविक थे, वे नाव चलाकर नदी की सैर करके सायंकाल को वापस आकर तट पर पहुंचे और एक दूसरे से समाचार पूछने लगे। एक नाविक ने कहा कि भाई मैं ऐसा चतुर हूं कि नाव जब भंवर के पास आती है, तब तत्काल वीरता से काम लेकर नाव चतुराई से उससे बाहर निकाल लाता हूं। दूसरे ने कहा कि मैं ऐसा चतुर हूं कि नाव को भंवर के पास जाने ही नहीं देता। दोनों में से श्रेष्ठ कौन? पिछला नाविक, क्योंकि पहला किसी न किसी

दिन भंवर का शिकार हो जाएगा। इसी प्रकार सत् मार्ग के पथिकों को ऐसा विचार रखना चाहिये। विषय विकारों से दूर भागा जाए, जैसे बटेर भागे बाज से।

अगर आग के नजदीक बैठोगे जाकर,
उठोगे एक दिन कपड़े जलाकर,
माना कि दामन बचाए रहे तुम,
मगर सेक हरदम लाते रहे तुम।

कोई जुआ नहीं करता, किन्तु देखता रहता है तो देखते-देखते वह जुआ करना सीख जाएगा और समय आएगा कि वह जुआ करने के अतिरिक्त रह न सकेगा। इसी प्रकार अन्य विषय भी हैं। विषय विकारों से दूर रहना चाहिये। जो विषयों से दूर रहते हैं, वे भाग्यवान हैं। किन्तु गृहस्थ आश्रम में रहते हुए, जो उनसे दूर रहते हैं, वे ही अधिक प्रशंसनीय हैं।

व्याकुलता क्यों:– एक मन्त्री धर्मात्मा और सत्संगी था। उसे राज दरबार का अत्यन्त बहुत काम करना पड़ता था। कभी-कभी उससे तंग आ जाता था। परन्तु बाद में जब उसे स्मरण आता था कि संसार नाशवन्त है, तब ठहाके मारने लगता था। कहता था "मैं यह क्या कर रहा हूं। किसका काम कर रहा हूं। सब नाशवान है तो फिर व्याकुलता किस बात की। हमें भी सब दम गुजर जानकर दुनिया में चलना चाहिये। विषयों में फंसकर अपना जीवन बरबाद न करना चाहिये।

स्वयं का निरीक्षण करो:– दूसरों को पहाड़ जितनी भूल भी तिल जितनी करके समझो, किन्तु अपनी तिल जितनी भूल भी पहाड़ जितनी करके जानो।

यदि कोई तुम्हारी निन्दा करे तो प्रसन्नता के साथ वह सुनो, मन को तपाना नहीं चाहिये। यदि तुम में सचमुच वह दोष हो तो उसे दूर करने का निश्चय करो, किन्तु यदि वह तुझमें न हो तो सुनी अनसुनी कर दो।

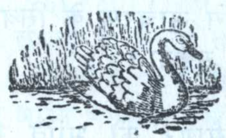
सदैव अपने दोष देखा करो। दूसरों के दोषों की ओर न देखो।

अपना सुख आप तू, निज मन मांहि विचार,
नारायण जो खोट है, ताको तुर्त निकार।

अनात्म रूपी पदार्थों में से वृत्ति निकाल कर आत्मा में लगाओ।

है सो सुन्दर है सदा–नहीं सो सुन्दर नहीं।
नहीं तो प्रत्यक्ष देखिये–है सो लहिए नहीं।

आत्मा सुन्दर है। आत्मा ही आनन्द का धाम है। मनुष्य जन्म प्राप्त करके, उसे जिसने नहीं पहचाना तो फिर मानवता किसकी।



(४)

भोगों की अग्नि से बचिये*

साधू कौनः– साधू वह जो कर्त्तव्यों का पालन करे, जिसमें शील हो। कहे एक और करे दूसरी, वह साधू नहीं कहा जाएगा।

कथणी सुनणी ठीक है, रहणी रहे न जो;
तीस बतीस दोहरी, तांहि पछानो सो।

तीस (३०) और बत्तीस (३२) हुए बासठ (६२)। उनसे दो निकाल दिए जाएंगे तो होंगे साठ। सठ (शठ) अर्थात् मूर्ख। जो नाना प्रकार की कथाएं सुने अथवा कथन करे, किन्तु उन्हें क्रियान्वित नहीं करता वह महामूर्ख कहा जाएगा। जिसमें दैवी सम्पदा के गुण नहीं हैं, वह साधू कैसे कहलाएगा? कागज पर सौ अग्नियां चित्रित करो, लेकिन वे कागज को जला नहीं सकेंगी। वैसे आचरण के सिवाय ज्ञान भी मनुष्य को लाभ नहीं पहुंचा सकेगा।

पीठ दीजियेः– सागर की भांति महा गम्भीर होकर रहो। सागर को जल की कोई इच्छा नहीं रहती, किन्तु नदियां स्वयं ही आकर उसमें प्रवेश करती हैं। तुम भी उसी

* २८ जून १९५७ पर नैनीताल में किया गया प्रवचन।

प्रकार बनो। किसी के समक्ष हाथ नहीं फहलाओ। सत्पुरुषों के पीछे धन स्वयंमेव ही फिरता रहता है। छाया के पीछे कोई पड़े तो वह हाथ नहीं आती, किन्तु आगे-आगे भागती जाती है। परन्तु जब छाया को पीठ दी जाती है, तब वह भी स्वयं पीछे-पीछे दौड़ती रहती है। उसी प्रकार जो माया से मुख मोड़ लेते हैं, माया उनके पीछे दौड़ती रहती है।

सच्ची शक्तिः– हमें यह समझना चाहिये कि जो महान शक्ति सूर्य, चन्द्र और तारों को प्रकाशित कर रही है, वह हम स्वयं हैं। अपने असली स्वरूप को पहचानो। अपनी शान का, अनादि ज्योति का विचार करें। सच्ची सुन्दरता का ध्यान करें और तुच्छ शरीर के सम्बन्ध इस प्रकार भुला दें, मानो वे थे ही नहीं। न तो मृत्यु है और न तो बीमारी अथवा अन्य कष्ट। सदैव हर हाल में हमें प्रसन्नता, आनन्द और शान्ति से भरपूर रहना चाहिए।

भोगः– "भोग रोग भयं।" भोगों में रोगों का डर रहता ही है। भोग भोगने का परिणाम रोग ही होता है। भोग बुरी बला (सांप) है। भोग भोगने के पश्चात् चित्त कदापि तृप्त नहीं होता। सदैव व्याकुल रहता है। भोगों का सुख अनित्य है। दिल चाहता है बार-बार भोग भोगूं। अतः मन की शान्ति नहीं रहती। जैसे घी को अग्नि में डालने से प्रथम वह बुझने लगती है, परन्तु तत्पश्चात् भड़क उठती है, वैसे भोग भी हैं। भोगने से पहले थोड़ी प्रसन्नता एवं तृप्ति होती है, परन्तु फिर अग्नि भड़कती है और मनुष्य को जलाती, कमजोर करती और नाश करती रहती है। वह बिलकुल दुखदायक है। मनुष्य को सदैव गुलाम बनाकर रखना चाहती है। अतः सर्वदा सावधान रहना चाहिये।

तृष्णाः– तृष्णा क्या है। पहले साधारण इच्छा उत्पन्न होती है, वह बढ़कर तृष्णा बनती है। तृष्णा उत्पन्न होने से प्रमाद एवं पाप आकर उसका साथ देते हैं, तत्पश्चात् मनुष्य होश गंवा बैठता है और अन्धा बनकर मन का आश्रय लेता है। उसका आश्रय लेकर वह ऊंचे हाथी की भांति किसी गहरे गड्डे में जाकर गिरता है, जहां से उसका निकलना कठिन हो जाता है। तृष्णा के साथ चिन्ता भी आकर घेरती है। तृष्णा वाले के हृदय में दुःख रूप देवता भी आकर दुर्ग बनाता है। तृष्णा वाला दूसरों को दुःख देकर भी सुखी होने की चेष्टा करता रहता है और इस प्रकार अपना जीवन व्यर्थ कष्टों में बिताता है।

कुसंगः– धुआं सफेद मकान को भी काला कर देता है, वैसे कुसंगी नेक व्यक्ति को बिगाड़ देता है। 'संग तारे-कुसंग डुबोवे।' यह सत्य है। मकड़ी कैसे एक कीड़े को फंसा कर, अपने घर में आकर बंद कर देती है, थोड़े दिनों के पश्चात् कीड़ा उस जैसा बन जाता है। कीड़ा हरी लता पर बैठता है तो अन्त में उसके संग में हरा हो जाता है। इसी प्रकार दुष्ट का संग है। उनके संग करने से मन मलीन होता है। नीच मनुष्य के संग से मरना श्रेष्ठ है।

कबीर संगति करिए साध की- अन्त करे निर्बाह,
साकत संग न कीजिए, जाते ही होय बिनास।
कबीर संगति साध की दिन दिन दूना हेत,
साकत कारे कानेबरे - धोए होय न सेत।

दर्शनः– बुदबुदा जल ही है। बुदबुदे को सागर का दर्शन तब होगा, जब अपना अस्तित्व छोड़ेगा तो फिर बुदबुदा और सागर एक ही हो जाएंगे।

बुदबुदा लहरों के पास गया तो मुझे सागर देवता का दर्शन कराइये। लहरें और बुदबुदा मिलकर सागर के पास दर्शन के लिए आए और प्रार्थना की कि "सागर देवता! हमें अपना दर्शन कराइये।" सागर ने फरमाया कि ऐ मूर्खो! तुम मुझसे भिन्न हो क्या? तुम स्वयं सागर हो। अस्तित्व करके तुमने स्वयं को भिन्न समझा है। तुम स्वयं मेरी जान हो। इसी प्रकार मनुष्य अपना आपा भुला बैठा है। वास्तविकता उससे भूल गई है।

शाह साहब का कलाम है कि "प्रतिध्वनि ही बुलावा है, यदि वाणी का रहस्य समझो। पहले ही साथ-साथ थे, सुनने में दो हुए। पुन्हू (प्रियतम) स्वयं हुए, किन्तु ससुई बने रहने पर पीड़ाएं थीं।"



(५)

एक को लीजिए*

सर्वदा आनन्द में रहो:– दुःख सुख, मान अपमान, हर्ष शोक आदि द्वंद्व शरीर के धर्म हैं। जब तक शरीर है, तब तक आते जाते रहेंगे। उनके आने जाने पर तुम व्याकुल न होओ। तुम पूर्ण हो। वे बातें तुम्हें चलायमान क्यों करती हैं, जो अल्प है और टिकने वाली नहीं है, परन्तु बीत जाने वाली हैं। उन्हें तो अपना अस्तित्व है ही नहीं। तुम्हारे अस्तित्व का आधार लेकर प्रतीत होती हैं। तुम उनसे भिन्न और उन्हें प्रकाशित करने वाले हो। अतः सर्वदा आनन्द में रहो और शान्त मन रहो। वास्तव में व्याकुल करने वाले पदार्थ नहीं हैं परन्तु उनका विचार व्याकुल करता है। इस विचार को सत् वस्तु में लगाकर अपने स्वयं में मगन रहो और सदैव प्रसन्नचित्त रहो। उद्यम न त्यागो। प्रारब्ध पर भरोसा रखना कमजोरी का काम है। अतः अपनी भलाई और दूसरों की भलाई के लिए हाथ पैर चलाते चलो। फल की इच्छा से ऊपर हो जाओ क्योंकि इच्छा बन्धन में लाती है। कुछ भी हो, तो भी स्वयं को उसका साक्षी समझकर आनन्द में रहो।

* ३० अक्तूबर १९५७ पर भोपाल में किया गया प्रवचन।

बिन्दियों के पीछे न पड़ो:– एक (१) को दाहिनी ओर बिन्दियां देते जाओगे, वैसे उसका मूल्य बढ़ता ही जाएगा। यथा एक को एक बिन्दी देने से दस, दो बिन्दी देने से सौ, तीन बिन्दियां देने से हजार और ऐसे अधिक से अधिक अंक होता जाएगा परन्तु यदि एक को मिटा दिया जाए तो फिर दाहिनी ओर वाली बिन्दियां कितनी भी हों तो उनका कोई भी मूल्य न रहेगा। यदि बिन्दियों का कुछ भी मूल्य है तो वह एक के कारण। वैसे यही दशा है दुनिया के पदार्थों की। सत् वस्तु के अतिरिक्त पदार्थों की सत्ता है ही नहीं। व्यवहारिक पदार्थ उस सत् वस्तु के सहारे ही प्रतीत होते हैं। अतः उन अनित्य पदार्थों के पीछे भटकना छोड़कर उस सत् वस्तु को पकड़ो तो भव-बन्धन से मुक्ति प्राप्त करोगे। वास्तव में मुक्ति एवं बन्धन भी विचार में हैं। उस विचार को अपने अन्तर्तात्मा में स्थिर करो तो फिर यह समस्त व्यवहार केवल प्रतीत मात्र जाकर रहेगा। तुम्हारे अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। तुम ही केवल अकेले विद्यमान हो, शेष बिन्दियां ही हैं।

उद्देश्य:– प्रत्येक प्राणी का उद्देश्य है नित्य सुख की प्राप्ति और सभी दुःखों का नाश। जो भी प्रवृत्ति हम करते हैं, वह इसके लिए, फिर भले ही हम यह न जानते हों, किन्तु हम ऐसे भोजन करते हैं अथवा सिनेमा देखते हैं। वस्त्र पहनते हैं अथवा घूमते-फिरते हैं, वह सब इसके लिए कि सुख मिले और यही है प्रत्येक का उद्देश्य कि सुख मिले परन्तु वह सुख जो नाश न हो और दुःख मिले ही नहीं। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बाह्य पदार्थों के वास्तविक स्वरूप को समझना आवश्यक है। उन बाह्य पदार्थों जिनका अस्तित्व है

ही नहीं, उनकी प्राप्ति केवल तुम्हारे कारण है। वास्तव में तुम्हारे अतिरिक्त कुछ है ही नहीं।

सहज प्राणायाम:– अत्याधिक उन्नति के लिए शारीरिक उन्नति करना प्रथम कर्त्तव्य है। शरीर ठीक होगा तो भजन ध्यान भी ठीक हो सकेगा। यदि शरीर ठीक नहीं होगा तो मन वश में न हो सकेगा, दुर्बल को कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। फिर व्यवहार में अथवा परमार्थ में इसके लिये प्राणायाम एक विचित्र मन्त्र है, जिससे शरीर स्वस्थ होता है और मन वश में होता है। सहज प्राणायाम यही है कि चलते फिरते तथा उठते बैठते भगवान-ध्यान चालू रखा जाए। हरि ओम् शान्ति का उच्चारण चलता रहे तो प्राण स्वयं ही दीर्घ होता जाएगा और इस प्रकार प्राणों पर संयम होना आरम्भ हो जायेगा। विशेषतः प्रातः सायं जब पेट खाली रहता है, यह दीर्घ नामोच्चरण हरि ओम शान्ति दीर्घ स्वर में उच्चारना अथवा जोर से अधिक फलदायक होगा, करके देखो। यदि चालीस दिन में प्रभाव ज्ञात न हो तो मैं उतर-दायी हूं। भगवत भजन के समय स्वाभाविक ही दीर्घ श्वास लिए जाते हैं, यही है सहज प्राणायाम।

प्रबल इच्छा:– संसार के सब व्यवसायों धन इकट्ठा करने सम्पत्ति संग्रह करने, सम्मान प्राप्त करने आदि के लिए हम क्या क्या नहीं करते। सिर को स्वाहा करने से भी नहीं चूकते। जब हम यह स्पष्ट जानते हैं कि यह सब साथ न चलेगा और अन्त में काम नहीं देगा। यदि हम चाहें तो भगवत् प्राप्ति भी कर सकते हैं, जो इस शरीर के न होने से साथ में नष्ट न होगी, शर्त यह है कि यह उद्यम हम उस

ओर लगावें, जो हम धन आदि पदार्थों के प्राप्त करने में लगाते हैं। उद्यम हम कर सकते हैं, कष्ट हम सह सकते हैं, केवल इच्छा को परिवर्तित करना पड़ेगा। ऐसा आज तक नहीं हुआ है कि मनुष्य को किसी पदर्थ को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा हो और उसे वह पदार्थ प्राप्त न हुआ हो। अतः सज्जनो, चित्त में प्रबल इच्छा धारण करो और उद्यम करो। किसके लिए? अनित्य पदार्थों की प्राप्ति के लिए नहीं। वे तो तुम्हारे साथ नहीं चलेंगे। वे केवल देखने मात्र के लिए हैं। उद्यम करो नित्य आनन्द प्राप्त करने के लिए, इच्छा रखो मुक्ति की। प्रबल इच्छा धारण करो अपने स्वरूप में स्थित होने की, अपने वास्तविक उद्देश्य पर पहुंचने की। ऐसा करो और सर्वदा आनन्द में रहो।

भलाई के कार्य:– सदैव भलाई के कार्य करते रहो, दूसरों को अच्छे कार्यों के लिए प्रेरित करो, यह भलाई का काम है, कर भला, होवे भला। झूठ न बोलो। ऐसा कोई भी काम मत करो, जिसके करने से लज्जा आवे। भगवान तुम्हें सदा शक्ति प्रदान करे, जो नेक कार्य करते रहो।

(६)

शिक्षा से आचरण उत्तम*

जीने का चावः– प्रत्येक प्राणी चाहता है कि मैं सदैव जीवित रहूं। शरीर में प्रत्येक की ममता है। कोई कितना भी बूढ़ा क्यों न हो जाय, तो भी जीवित रहना चाहता है। शास्त्रों में एक कथा है कि एक दिन नारद महाराज रटन करते हुए भगवान नारायण के पास गये। भगवान को कहने लगे– "महाराज! स्वर्ग में कितने ही स्थान खाली पड़े हैं, वे भर क्यों नहीं देते? उसके लिए इतनी बड़ी फीस क्यों लेते हैं?"

भगवान ने नारद को कहा– "प्यारे नारद, यदि तुम्हारी यह इच्छा है तो आज का दिन तुझे छूट है। जितने भी लोग चाहो वे लाकर उनका स्वर्ग में प्रवेश कराओ।"

यह सुनकर नारद अत्यन्त प्रसन्न हुआ और पृथ्वी पर आया। मार्ग में उसे एक युवक मिला। नारद ने उससे कहा– "ए प्रियतम, जाते कहां हो? मेरे साथ चलो तो मैं तुझे स्वर्गधाम को ले चलूं। आज का दिन स्वर्ग का द्वार सर्वथा खुला है।"

नवयुवक ने चकित होकर कहा– "तुम कहते क्या हो? कुशल तो है? मैंने अभी ताजा विवाह किया है! मुझे अभी कोई बच्चा ही नहीं हुआ है। अभी कैसे चलूंगा?"

* १५ जनवरी १९५८ को कानपुर में श्री उत्तमचन्द मूलचन्दाणी के घर में किया गया प्रवचन।

नारद ने यह सुनकर मन में सोचा कि किसी वृद्ध व्यक्ति की तलाश करूं। आगे बढ़ा तो उसे एक बृद्ध मिला। नारद ने उससे कहा– "बूढ़े बाबा! स्वर्ग को चलना चाहो तो मेरे साथ चलो। वहां बहुत आनन्द है। तुमने संसार के बहुत भोग भोगे हैं।"

बृद्ध व्यक्ति यह सुनकर कांप गया। उसने उत्तर दिया– "ऐसे कैसे होगा। अभी तो पोता जन्मा है। वह बड़ा हो, जनेऊ पहने कुछ तो आशाएं पूरी हों। कुछ वर्ष तो ठहरो।"

नारद इस पर निराश होकर, लौटकर भगवान के पास गये और कहा– "कोई भी स्वर्ग में आना स्वीकार नहीं करता। एक बृद्ध को मैंने कहा। उसने भी कहा कुछ वर्ष ठहरो।"

भगवान ने कहा– "अच्छा, मैं तुझे इजाजत देता हूं कि जब चाहो, तब किसी को भी ले आना।"

कुछ वर्ष बीत गए। बूढ़ा अत्यन्त कमजोर हो गया था, नारद फिर उसके पास गया और उससे कहा– "अब तो तुम्हारी कामनाएं पूर्ण हो गई होंगी। अब तो मेरे साथ स्वर्ग में चलोगे?"

वृद्ध ने क्रोध से कहा– "महाराज, क्या तुम्हारी आंखें केवल मुझमें आ गड़ी हैं? अब मेरा पोता विवाह तो करे।"

"अच्छा, भले ही शादी करो।" ऐसा कहकर नारद लौट गया और कुछ वर्षों के पश्चात् फिर वहां गया। वहां पहुंचने पर उसे विदित हुआ कि कुछ वर्ष पहले उस बूढ़े का देहांत हो चुका है। नारद ने आंखें बन्द कर देखा तो वह बूढ़ा कुत्ते की योनि लेकर आया है और उसी घर का रक्षक होकर बैठा है। नारद ने मन में सोचा कि अब उसे कहकर देखूं। बढ़कर कुत्ते के पास गया और उससे कहा– "मानव योनि

तो तुमने ऐसे ही गंवाई। अब कुत्ते की योनि में दुःख भोग रहे हो। क्या अब मेरे साथ चलोगे तो स्वर्ग में ले चलूं?"

कुत्ते ने कहा- "मैं स्वर्ग को नहीं चलूंगा। यहां हूं तो पुत्र पोतों को देखकर तो प्रसन्न हो रहा हूं।"

अब नारद निराश होकर पीछे लौटा और जाकर भगवान को सारी कहानी सुनाई कि वह बूढ़ा कुत्ते की योनि में भी स्वर्ग में आने के लिए उद्यत नहीं है। तब भगवान ने उसे कहा- "नारद, अब तो तुमने देखा न कि कोई भी स्वर्ग में आने के लिए तैयार नहीं।"

सचमुच मनुष्य इतना तो ममता में फंसा रहता है कि वह परमार्थ का विचार नहीं रखता। वह संसार में अपने को अतिथि न मानकर, उसे अपना सदैव का स्थान समझ बैठा है और इसलिए यह सैंकड़ों दुःख सहन करता रहता है और जब उसकी आयु बीत जाती है और काल आकर उसके कंधों पर खड़ा रहता है, तब बहुत रोता है और पछताता है। किन्तु बाद में क्या होगा? श्री तेग बहादुर जी नवम महले के श्लोकों में कहते हैं-

कीओ हो सो ना कियो, पड़ियो लोभ के फंद,
नानक समो रम गयो- अब क्यों रोवत अंध?

नाम और रूपः- नाम और रूप क्या है? नाम रूप वह माया है, जो परिवर्तित होती जाती है ओर नित्य नये-नये रंग रूप धारण कर रही है। नहीं तो अस्ति, भाति, प्रिय ही साक्षी चेतन है।

हनुमान से श्री रामचन्द्र ने पूछा कि- "ऐ हनुमान! तुम मुझे क्या समझते हो?" हनुमान ने उत्तर दिया कि यदि जीव दृष्टि से पूछते हैं तो मैं आपका दास हूं, लेकिन यदि वास्तविक दृष्टि से पूछते हैं तो मैं आपका ही रूप हूं।" वास्तविकता तो यही है।

नाम और रूप प्रत्येक वस्तु के बदलते रहते हैं, किन्तु अस्ति, भाति, प्रिय नहीं। कपास का ही उदाहरण लीजिये। वह नाम और रूप परिवर्तित करती हैं। कपास काती जाती है तो तागे होते हैं। उसका रूप बदल गया, उसका नाम भी कपास से बदलकर सूत अथवा तागा हुआ। यह सूत बुनकर वस्त्र का रूप धारण करता है। उस कपास का नाम ही कपड़ा हुआ और उसका रूप भी बदल गया। फिर वह विभिन्न रूपों से सिलकर पाजामा, कुर्त्ता, सूट आदि नाम धारण करता है। उसके रूप भी अलग अलग होते हैं। वे हमें प्रिय भी लगते हैं। वह कपड़ा गलकर, फटकर टूट जाता है, तब उससे फिर कागज बनता है और उसी कागज से पुस्तक। इस प्रकार नाम और रूप बदलते रहते हैं। वह पुस्तक भी अस्ति, भाति, प्रिय है। उसे अस्ति (अस्तित्व-Existance) है, भाति है अर्थात् भासता है, क्योंकि उसका ज्ञान हमें होता है और प्रिय भी है, क्योंकि वह हमें प्यारा लगता है। सबकी यही दशा है।

अभ्यास में अरुचिः- स्वामी जी का प्रवचन चल रहा था तो एक जिज्ञासु ने विनती की- "स्वामी जी, कृपा करके बताओ कि अभ्यास में हमारी रुचि क्यों नहीं होती?"

महाराज ने फर्माया- "बाबा, अभ्यास से मजा तब आयेगा, जब उसकी आवश्यकता अनुभव की जाएगी। कहानी कहते हैं- "एक दिन सियार को बहुत प्यास लगी। प्यास से परेशान होकर दौड़ता हुआ वह नदी के तट पर पहुंचा

और जल्दी जल्दी पानी पीने लगा। सियार की पानी के लिए इतनी तड़प देखकर मछली ने सियार को कहा- "मामा सियार, तुम्हें पानी से इतना मजा क्यों आता है? मुझे तो आता ही नहीं।"

सियार ने उसे कहा- "दिखाऊं कि मजा क्यों आता है?" मछली ने कहा- "हां मामा।" सियार ने उसे गले से पकड़ कर, गरम रेत पर फेंक दिया। बिचारी पानी के सिवाय बहुत तड़पने लगी और परेशान होकर मरने पर थी तो सियार ने फिर उसे पानी में डाला और उससे पूछा कि- "अब जाना कि मजा आने का कारण क्या है?"

मछली ने कहा- "हां, अब मैंने समझा कि जल ही मेरा जीवन है, उसके अतिरिक्त मेरा जीना ही कठिन है।" इस मछली की भांति जब तुम भी अनुभव करोगे, तब अभ्यास के सिवाय रह नहीं सकोगे और रात दिन उसमें लगे रहोगे।

गुरु नानक देव से माता जी ने पूछा- "बेटे, रात दिन जबान से क्या कहते रहते हो?" साहब ने कहा- "आखां जीवां-बिसरे मर जाय, रात दिन जब सच्चा नाम स्मरण करता हूं, तभी मैं जीवित हूं, नहीं तो मर जाऊं।" इस प्रकार सत्पुरुष अभ्यास की आवश्यकता अनुभव करके, उस रंग में लीन रहते हैं और बार-बार साक्षी रूप का चिन्तन करते रहते हैं।

ऊठत बैठत सोवत नामा, कह नानक जन सद कामा।

भेद क्यों:- जीवात्मा और परमात्मा दो भिन्न वस्तु नहीं हैं। जीव से अज्ञान निकलेगा और माया पर दृष्टि न डालने से एकता भासेगी। जिस प्रकार एक डिब्बे में गेहूं पड़ा है

और दूसरी टोकरी में भी गेहूं पड़ा है। डिब्बे और टोकरी का विचार छोड़ दोगे तो शेष सामान्य वस्तु गेहूं ही रहेगी।

एक गुरू ने शिष्य से कहा- "बेटे, गंगा नदी से जल का गिलास भरकर लाओ।" शिष्य ने आज्ञा का पालन किया। गुरू ने शिष्य से कहा- "बेटे! यह गंगाजल कहां है? गंगा में तो नावें चल रही हैं, इनमें वे कहां हैं? गंगा में लोग नहा रहे हैं, इनमें वे कहां हैं?"

शिष्य घबरा गया। उसने कहा- "स्वामी जी, मैं तो गंगाजी से जल भरकर लाया हूं।" शिष्य को घबराया हुआ देखकर गुरू ने फर्माया- "बेटे, दु:खी न हो। यह जल और गंगा जल कल्पना के कारण भिन्न भासता है, वास्तव में है वही। यह फिर जाकर गंगा में डालोगे तो वही रहेगा, रत्ती भर भी भेद नहीं बेखोगे। इसी प्रकार आत्मा और परमात्मा भ्रांति के कारण दो वस्तुएं प्रतीत हैं, किन्तु हैं एक।"

जिस प्रकार कमरे के भीतर की जमीन और बाहर की जमीन भिन्न दिखाई पड़ती हैं, यद्यपि दीवारें जिन्होंने उनको अलग किया है, वे पाताल तक गई हुई नहीं हैं। वास्तव में जमीन में भेद नहीं है, दोनों जमीनें एक हैं, लेकिन दीवारों की भ्रांति के कारण भिन्न भासती हैं। वही अवस्था जीव ब्रह्म से भी है।

जब बोला जाता है, तब आवाज वही एक होती है, किन्तु जो सुनता है, उसे सुनने वाला कहा जाता है, लेकिन दोनों के कर्त्तव्य भिन्न भिन्न हैं। इसी प्रकार ईश और जीव दो नाम हैं। बात एक है, लेकिन कल्पना के कारण दो कहे जाते हैं। दोनों में से नाम रूप निकाल दो तो शेष एक चेतन की ही सत्ता रहेगी।

वाद विवादः– व्यर्थ वाद विवाद न करो। बहुत बोलना उचित नहीं है।

वाद विवाद काहू से न कीजिए,
रसना राम अमृत रस पीजिए।

यदि घी अधिक खाया जायेगा तो अपथ्य हो जायेगा। यदि वर्षा अधिक होगी तो हानि हो जायेगी। देखते हो कि दीपक जलता है तो बाती और तेल जलता है। इसी प्रकार जितना बोला जाता है, उतनी भीतर की शक्ति (Energy) कम होती है। इसलिये इस युग का महान पुरुष महात्मा गांधी भी प्रत्येक सोमवार पर मौन व्रत धारण करते थे और बोलते बिलकुल नहीं थे।



(७)

मनुष्य जीवन का उद्देश्य*

कर्म फलः– दो बातें कभी न भूलो, एक तो जैसा जैसा कर्म करोगे, वैसा वैसा फल मिलेगा। जैसे धरती में जैसा बीज डालोगे, वैसा ही फल उत्पन्न होगा। कोई भी वह बोए किन्तु जमीन किसी का भी विचार नहीं करती, अमीर हो अथवा गरीब। सबको फल देती रहती है, वैसे ही इस पृथ्वी पर जो मनुष्य जैसा कर्म करता रहता है, उसको वैसा फल अवश्य मिलता है।

दूसरी बात कि जैसे एक बीज का फल एक नहीं होता, एक बीज डालने से कई दाने वाली के रूप में उत्पन्न होते हैं, वैसे थोड़ी ही बुराई करने से बड़ा धोखा पहुंचता है, थोड़े पुण्य कर्म करने से बड़ा लाभ पहुंचता है, थोड़े पुण्य कर्म करने से मन शान्त रहता है, अनेक प्रकारों के रूप में सुख रूप ही भासता है।

अतः कोई भी कर्म थोड़ा करके न जानो। थोड़ी भूल पहाड़ के सदृश समझना चाहिये।

इसलिए मन को बार-बार समझाओ कि हे मन, यह क्या कर रहा है? तृष्णा रूप गंदे जल में गोते खा रहा है। अमूल्य मनुष्य जन्म विषय भोगों में बरबाद कर रहा है।

* २४ जून १९५८ पर नैनीताल में किया गया प्रवचन।

रत्नों को छोड़कर कंकड़ इकट्ठे कर रहे हो। तुम अपने पड़ाव की यात्रा में कांटे बो रहे हो। तुझे जाना कहां था और जा कहां रहा है। असंख्य योनियों में भटक भटक कर, आखिर तुझे यह अमूल्य मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है। यह जन्म तुझे किन्हीं पुण्य कर्मों के कारण प्राप्त हुआ है। 'बड़े भाग मानुष जन्म पाया' परन्तु तुम इस शरीर में भी विकारों के वश में हो गए हो। वे तुम्हें रात दिन लूट रहे हैं तो भी तुम्हें कोई पता नहीं पड़ता।

भोग में रोगः– गुरु ग्रन्थ साहब के राग आशा वाणी श्री रविदास शब्द पहले में आता है –

मृग मीन भ्रंग पतंग कंचर, एक दुःख बिनास;
पंच दूख असाध जामंहि, ताकि के तक आस।

श्री रविदास जी फरमाते हैं कि हिरन शब्द पर रीझ कर शिकारी के वश में हो जाता हैं, मछली खाने के लोभ में धीवर के जाल में फंसती है। भ्रमर फूल की सुगन्ध पर आसक्त होकर अपनी जान बलिदान कर देता है, पतंग दीपक की ज्योति पर मस्त होकर अपने को जलाकर समाप्त कर देता है, हाथी काम के वश में होकर गड्ढे में गिरता है। अर्थात् प्रत्येक एक एक विषय के वश में होकर स्वयं को नाश कर देता है, परन्तु मनुष्य तो पांचों विषयों में फंसा हुआ है। अतः उसके बचने की कौनसी आशा होगी? अवश्य ही वह नाश होगा।

भोग को सदैव रोग समझो। विषय विकारों में डूब कर सुख शान्ति की अभिलाषा कर रहे हो। शोक तुम्हारे ऐसे जीने पर!

तुम्हारा लक्ष्य कौन था? स्व स्वरूप में लीन (Reunion) होने का था परन्तु तुम ऐसे निर्लज्ज हो गए कि तुम्हें कोई लज्जा भी नहीं आती।

स्मरण रखो कि तुम्हें धर्मराय के समक्ष आंख नीची करनी पड़ेगी। कबीर साहब ने फरमाया है –

धर्मराय जब लेखा मांगे – क्या मुख लेके जाएगा?
कहत कबीर सुनो रे साधो – साध संगत तर जाएगा।

भूलो नहीं कि वहां प्रत्येक अन्न प्रकट होगा, प्रत्येक अपने कामों के लिए उत्तरदायी रहेगा। तुम्हें तो वहां अपना सिर नीचे करना पड़ेगा। अतः सोचो अभी भी समय गया नहीं है। सामी साहब कहते हैं कि जो समय बीता, वह बीत गया, शेष समय तो अच्छा आचरण करो। अन्तःकरण में अपने प्रियतम को देखो। मनुष्य देह वापस नहीं मिलेगी।

अतः आज अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लो कि मैं सत् पुरुषों का संग करके, सत् शास्त्रों का अध्ययन करके, विवेक एवं वैराग्य का आश्रय लेकर, किसी ब्रह्मनेष्ठी, ब्रह्म-श्रोत्री महापुरुष की शरण पकड़कर, अपने कर्त्तव्यों का पालन करके इस मनुष्य योनि में मोक्ष पद को प्राप्त करूंगा।

(८)

कल्याण मार्ग*

परमात्मा और सत् पुरुषों के साथ सदैव प्रेम भले ही रखा जाय, रखना भी चाहिये, यह कल्याण का मार्ग है, किन्तु प्यारे, बार-बार यह बात कहनी न चाहिये। यह प्रेम जितना भीतर रखा जाएगा, उतना अधिक लाभ होगा। जिनको समझा जाय कि ये यथार्थ आत्मदर्शी हैं, उन्हें भूलकर भी शरीर भावना से न देखना चाहिये, अपितु पूर्ण ही पूर्ण सच्चिदानन्द स्वरूप समझा जाय। आत्मा करके वे यथार्थ आत्मदर्शी और हम सभी एक हैं, जरा भी भेद नहीं है। जैसे एक ही आकाश सब घरों में और घड़ों में चारों ओर फैला हुआ है, वैसे आत्मा करके हम एक आकाश की भांति व्यापक हैं, द्वैत ही बन्धन का कारण है। जिस दिन से स्वयं को हमने शरीर समझा और परमात्मा से अपने को भिन्न समझा, बस, उस दिन से दुःख आरम्भ हुए।

हमारे सामने यह उद्देश्य होना चाहिये कि स्वयं को पहचान कर जन्म आदि दुःखों से छुटकारा पाकर, अखण्ड आनन्द में लीन होंगे अर्थात् मुक्त हो जायं और जीवन मुक्ति बिदेह मुक्ति का आनन्द ले सकें।

शरीर की आसक्ति ही हमें कष्ट देती है।

---

* २५ जून १९५८ पर नैनीताल में किया गया प्रवचन।

अर्जुन बड़े मोह में पड़ा था। श्री कृष्णचन्द्र के समझाने पर वह समझ गया और जाना कि अरे संसार अर्थात् स्वप्न में तो अन्धकार में अन्धों की नाईं ढूंढता ही रहा। अरे जैसे मुझ साक्षी में सपने की सृष्टि है, वैसे यह भी सपने की बाजी है।

बाजीगर जैसे बाजी पाए, लोक तमाशे आए।

हमारी आत्मा स्थिति बार-बार चिन्तन करने से हो सकती है। जो अपने को शिष्य कहलाता है, अरे वह यदि शिष्य होकर रहा और गुरू न बना तो फिर उसने शिष्य बनकर क्या किया? अर्थात् यदि वह पूर्ण ज्ञानी न बना और अज्ञान के अन्धकार में सदैव रहा अर्थात् अपने हाड़, मांस, मल आदि से भरा हुआ ही समझता रहा तो फिर वह सच्चा शिष्य कैसे कहा जाएगा? इस शिष्य होने से उसे कौन सा लाभ हुआ?

(१)

एक रस कैसे रहा जाय*

विचित्र मन्त्रः– प्रत्येक मनुष्य की प्रायः यह भावना रहती है कि मैं सदैव सुखी रहूं और कदापि दुःखी न रहूं, किन्तु सुख दुःख तो ऊपर आकाश से नहीं गिरता। विचार ही हैं, जो मनुष्य को दुःखी अथवा सुखी करते हैं। कैसे भी खुशी के वातारण में कोई मग्न क्यों न हो तो भी उस समय यदि उसके चित्त में किसी फुरने ने आ घेरा तो ठीक उसी समय ही वह उदासीन दिखाई देता रहेगा। अतः प्रिय प्रियतम, यदि तुम चाहो तो मैं सदैव प्रसन्न रहूं और मेरा मन कदापि चंचल न हो तो फिर यह विचित्र मन्त्र याद रखो– "यह भी बीत जाएगा।" यह सदैव हृदय पटल पर अंकित कर दो। यह मन्त्र है, जिसके सदैव स्मरण अथवा ध्यान करने से मनुष्य दुःख सुख के समय स्वयं को संभाल कर सावधान हो सकता है, न दुःख में कुम्हलाता है और न सुख में फूलता है।

ईश्वर दरबारः– सत्संग हंसी मजाक नहीं। राजदरबार में कैसे न सावधान रहना पड़ता है। यहां सत्संग में उससे अधिक सावधान रहना है। कुछ माताएं सत्संग में मालाएं

---

* २६ जून १९५८ पर नैनीताल में किया गया प्रवचन।

फेरती रहती हैं, कुछ स्वीटर बुनती रहती हैं, तो कुछ खरबूजे का बीज छीलती रहती हैं, यह कैसी न मूर्खता है। भक्ति मार्ग कोई हंसी है क्या? इस प्रकार अमूल्य समय व्यर्थ जाता है। इस प्रकार मन की वृत्ति एक स्थान पर नहीं रहेगी तो सत्संग किसका? ऐसा करने से मन चंचल रहेगा और मन कदापि स्थिर न रह सकेगा।

लख बन्दूक लग रहन, लख लगन तीर,
पार दास यह मन न मरे, बिना शब्द के सीर।

ईश्वर दरबार में सम्मान के साथ बैठना चाहिये और नित्य श्रद्धा से सत्संग श्रवण करना चाहिये।

सदैव एक रस रहोः– स्वयं को साक्षी जानो। किसी कार्य के हर्ता कर्त्ता समझकर अपने को दुःखी न करो। तुम तो सत् चित् आनन्द स्वरूप, न बुझने वाली ज्योति हो। संसार के परिवर्तन में स्बयं को मत फंसाओ। नवम् के पहाड़ में कैसी न विशेषता है?

१	९	९	६	९	५४
२	९	१८	७	९	६३
३	९	२७	८	९	७२
४	९	३६	९	९	८१
५	९	४५	१०	९	९०

प्रत्येक दशा में पिछले अंकों का योग करके देखोगे तो उत्तर नौ (९) आएगा। २×९=१८ में १+८=९, २७ में २+७=९ होता है। इस प्रकार अन्य सब अंकों का योग प्रत्येक दशा में ९ होता है। इसी प्रकार तुम अपने वास्तविक स्वरूप को एक रस विश्वास सहित जानो और सदैव आनन्द में रहो।

दुःख सुख का साक्षीः– जोधपुर के शहर में एक ८० वर्ष का वृद्ध अत्यन्त दुःखी रहता था। वह सन्तों के पास गया। उन्हें जाकर दिल का हाल बताया। कहा "स्वामीजी, आशीर्वाद करें कि प्राण निकलें। मैं अत्यन्त दुःखी हूं। मेरा बेटा बैरेस्टर है, आज्ञाकारी है। परन्तु उसकी धर्मपत्नी सारा दिन झगड़ा लगा बैठी है। मुझे ठीक समय पर भोजन भी नहीं मिलता।" सन्तों ने उसे उपदेश किया–

मनुष्य जन्म दुर्लभ है, होय न बारू बार,
जैसे फल पाका भूं गिरे, बहुर न लागे डार।

आत्मिक चिन्तन करो। तुमने समस्त आयु ऐसे ही गंवा दी है। तुम सबके साक्षी हो। अजर, अमर, आनन्द स्वरूप हो। तुम्हें दुःख सुख कुछ नहीं कर सकता। तुम उससे थोड़ा ऊपर चढ़ो और फिर आनन्द देखो।"

उसने ठीक वैसा किया तो उसके दुःख दूर हो गए। दुःख रूप वृत्ति को परिवर्तित करके, उसने सुख रूप कर दिया। थोड़े समय के पश्चात् उसका फिर सन्तों से मिलना हुआ। उसने सन्तों को कहा– "स्वामीजी" आपने मुझ पर बड़ी कृपा की। अब तो झगड़ा है ही नहीं। मैं सावधान रहता हूं। मुझ में दुःख प्रवेश ही नहीं करता। यमराज को भी शक्ति नहीं कि मुझ से सामना कर सके।"

सन्तों ने उसे कहा– "बेटा, सब कुछ प्रारब्ध के वश में है। दुःख सुख के तुम साक्षी हो। यदि कोई दुःख हो तो ऐसा समझो कि मेरे कर्मों का फल विधाता माता दे रही है। यह सब निमित्त कारण है, विभिन्न स्थानों पर, विभिन्न समयों पर कोई महान शक्ति है, जो काम कर रही है।"

लक्ष्मण ने श्री रामचन्द्र महाराज को कहा– "कैकेयी को मजा चखाना चाहिये।" श्री रामचन्द्र ने उसे रोका और कहा "कैकेयी तो मुझे अपनी माता से भी अधिक प्यार करती है। इस बिचारी का क्या दोष? सब कुछ प्रारब्ध के वश में है।

कका कारण कर्त्ता सोऊ – लेखा लेख न मेटन कोऊ,
नहीं कुछ होत दोऊ बारा – करणी हारा न बोलण हारा।

कैकेयी माता यदि ऐसा न करती तो बनवास में कौन जाता और राक्षसों को कौन मारता? स्मरण रखो कि कोई किसी को कुछ नहीं कर सकता।

नाच नचे संसार मति – मन के भाइ सुभाई,
होवन हार न मिटे कस – तोड़े यत्न कोढ कमाई।

(१०)

महान मूर्ख कौन?*

ज्ञानचन्द नामक एक जिज्ञासु था। वह सदैव प्रभु भक्ति में लीन रहता था। दान पुण्य बहुत करता था। स्नान करके पूजा पाठ करता था। तत्पश्चात् जाकर दुकान का कार्य करता था। भोजन का समय होता था तो दुकान बन्द करके जाता था और फिर नहीं खोलता था। उसके आचरण पर लोग चकित थे और उसे पागल समझते थे। वे कहते- वह महान मूर्ख है कि सब पैसे दान में लुटा देता है तथा दुकान भो थोड़े घंटे ही खोलता है। प्रातः सायं सत्संग में समय बरबाद कर रहा है। यह तो कोई पागल है।

एक दिन नगर के सेठ ने उसे अपने पास बुलाया। उसने एक लाल टोपी बनवाई थी। वह उसे देकर कहा- "यह टोपी मूर्खों के लिए है। तुम्हारे सदृश कोई महान मूर्ख दीखने में नहीं आया है, अतः यह तुझे पहनने के लिए देता हूं। इसके पश्चात् यदि तुझे अपने से कोई बड़ा मूर्ख दिखाई पड़े तो उसे पहनने के लिए दे देना।"

ज्ञानचन्द शान्ति में वह टोपी लेकर घर लौटा। एक दिन नगर का वह सेठ बीमार पड़ गया। ज्ञानचन्द उससे मिलने के लिए गया। उससे समाचार पूछने लगा। सेठ ने कहा-

* २६ जून १६५८ पर नैनीताल में किया गया प्रवचन।

"बाबा" अब चलने की तैयारी है। ज्ञानचन्द ने उससे पूछा- "कहां जाने की तैयारी की है आपने? वहां कोई व्यक्ति भेजा है कि आपके लिए जाकर प्रबन्ध करे? अपने साथ स्त्री, पुत्र, भाई अथवा कोई अन्य ले जाएंगे अथवा नहीं?"

सेठ ने उत्तर दिया कि "भाई, वहां कौन साथ में चलेगा? कोई भी साथ चलने वाला नहीं। 'अकेला आना, अकेला जानता, कोई न रहसी राजा राना।' कुटुम्ब परिवार, धन, दौलत, महल, गाड़ियां सभी छोड़कर यहां से जाना है। भगवान के अतिरिक्त कोई भी साथी होने वाला नहीं है।"

सेठ के ये शब्द सुनकर ज्ञानचन्द ने अपने यहां सेठ की दी हुई लाल टोपी सेठ को देकर कहा "आप पहनिये।" सेठ ने पूछा- "क्यों?" ज्ञानचन्द ने उत्तर दिया कि मुझसे महान मूर्ख आप हैं, जो आपको पता भी था कि समस्त सम्पत्ति यहां ही रहेगी, आपका कोई भी साथो न होगा और भगवान के सिवाय कोई भी सहायक नहीं है।

सुख में आन बहुत मिल बैठत, रहत चौदिस घेरे,
विपत पड़े सभी संग छोड़त, कोउ न आवे नेरे।

जब कोई धनवान एवं शक्तिवान है, तभी प्रत्येक स्वामी स्वामी करता रहता है और चारों ओर से घेरकर खड़ा होता है। किन्तु जब कोई आपदा आती है, तब कोई पास नहीं आता है। ऐसा जानते हुए भी क्षणभंगुर वस्तु से आप ने प्रीति लगाकर, आत्मिक सुख लेने से निराश रहे और अपने भविष्य का सामान इकट्ठा न किया। इस अवस्था में आपसे महान कौन मूर्ख हो सकता है? गुरु तेग बहादुर साहब ने नवां महले के श्लोकों में फरमाया है-

करणो हो सो ना कीओ पड़ियो लोभ के फंद,
नानक समो रम गयो - अब क्यों रोवत अन्ध?

"सेठ साहब! अब तो आप कुछ नहीं कर सकते। आप देख रहे हैं कि कोई भी आपकी सहायता करने वाला नहीं। क्या वे बड़े मूर्ख नहीं कहलाएंगे, जो जानते हुए भी माया के मोह में फंसकर, ईश्वर से विमुख रहे, कुछ करते, दान पुण्य करने से हाथ ठंडे करते, ईश्वर कीर्तन, नाम स्मरण और सत्संग में जी तन व्यतीत करते तो इस प्रकार दुःखी क्यों होते?"

नशे से बचोः - सवेरे उठना भी कर्त्तव्य है। अपने बालकों को सवेरे उठाओ, स्वयं भी सवेरे उठो। सिनेमा से बचो। वे डाकू हैं नशे लूटते हैं। डाकुओं के हाथ न चढ़ो। जो कहते हैं कि शराब भले पीओ, मांस खाओ, उनसे स्वयं को बचाओ। सावधान होकर चलो। वे सब डाकू हैं। अध्यापक यदि अपने कर्त्तव्य का पालन करें तो वे आचार्य हैं। पाप करने से तुम सुख नहीं पाओगे। छिपाकर किससे पाप करोगे? प्रभु तो सबको देखता है।

बड़े में बड़ा सुखः– बड़े में बड़ा सुख है मुक्ति का। बड़े में बड़ा दुःख है पाप का। प्रभु की प्रार्थना मिलकर अथवा अकेले अवश्य करनी चाहिए। कमर कसकर परमात्मा को याद करो तथा औरों को याद कराओ तो तुम्हें भी भाग मिलेगा। 'परमेश्वर ते भूलिए व्यापन सभी रोग।' अतः भगवान को सदैव याद रखो।

---

(११)

ज्ञान कब होगा?*

अजमेर में एक जिज्ञासु ने प्रार्थना की कि वेदान्त का ज्ञान तो ध्यान में आता ही नहीं और रूखा लग रहा है, उस पर स्वामीजी ने कहा- "बाबा, जब तक मन नहीं मरा है, तब तक वेदान्त का ज्ञान अच्छा लगेगा भी कैसे? श्री विद्यारण्य स्वामी "जीवन मुक्तिविवेक" ग्रन्थ में कहते हैं कि सहस्र अंकुरों टहनियों और पत्ते वाले संसार रूप वृक्ष की जड़ मन ही है। यह आवश्यक है कि संकल्प को दबाने के लिए मन का रक्त, बल सुख देना चाहिए, उसे नाश कर देना चाहिए। ऐसा करने से यह संसार रूप पेड़ सूख जाएगा।"

आगे चलकर कहते हैं कि "अब मैंने समझा, अभी ही मैंने समझा आत्मदेव को चुराने वाला चोर मैंने मन को समझा है। अतः अब इस मन को मारता हूं, उसने बहुत दिनों से मुझे मारा है।"

महाराज वशिष्ठ कहते हैं कि "अनेक प्रकारों के फल-दाता इस संसार रूप वृक्ष को जड़ से उखाड़ने का, अपने मन को वश में करने का केवल एक ही उपाय है। मन का उठना और स्वच्छन्दता अपनाना ही मनुष्य के नाश होने का कारण है और मन की समाप्ति होना उनकी उन्नति का कारण है।"

* १३ सितम्बर १९५८ को अजमेर में किया गया प्रवचन।

"ज्ञानी का मन नाश को प्राप्त होता है और अज्ञानी को मन बांधने वाला जंजीर है। जब तक परम तत्त्व (सत्) के दृढ़ अभ्यास से अपने मन को जीता नहीं जाता, तब तक आधी रात को नाच करने वाले प्रेत, पिशाच आदि की तरह वह नाच करता रहता है।

"जिसके चित्त का अभिमान (मलिन अहंकार) अर्थात् धन आदि झूठे पदार्थों पर गर्व करना शान्त नहीं हुआ है और जिसने इन्द्रिय रूप शत्रु को वश में किया है, उसकी भोग वासनाएं, जैसे जाड़े में कमल का फूल नष्ट हो जाता है, वैसे नष्ट हो जाती हैं। जो हाथ से हाथ को दबाकर, दांतों से दांत दबाकर, अंगों से अंग पलट कर, पहले अपने मन को जीतते हैं, वे ही पुरुष इस विशाल संसार में भाग्यवान बुद्धिवान हैं। उनकी ही मनुष्यों में गिनती हो सकती है।

"हृदय रूप बन में फन निकालकर बैठा हुआ सांप मन है। जिसमें संकल्प विकल्प रूप घातक विष है, ऐसा मन रूप सांप जिसने मारा है, उस पूर्णिमा के पूर्ण चांद की तरह निर्विकार पुरुष को मैं नमस्कार करता हूं।"

"इस माया चक्र के बीच में चित्त है, जो सब ओर से उस पर आक्रमण करके स्थिर बना है, उसे कोई भी बाधा नहीं आती।"

श्री गौड़पाद आचार्य ने कहा है- "समस्त योगी पुरुषों को भव (संसार) का नाश मन के वश में करने से ही होता है। इस प्रकार दु:ख की निवृति ज्ञान और अक्षय शांति भी मन के वश करने में ही है।"

जैसे सपने को सृष्टि एक काल्पनिक बगीचा है और यह दृढ़ निश्चय है, वैसे यह दुनिया जो दीखती है, वह भी निश्चय

ही एक काल्पनिक बगीचा है। सपने की सृष्टि सपने के समय ही सच्ची भासती है, जब तक पूर्ण रीति से सत् का ज्ञान नहीं हुआ है, न उससे पहले और न पीछे। जैसे सपने से जागने पर उसके असत् होने का पता पड़ता है, वैसे अपरोक्ष 'यथार्थ' ज्ञान होने पर उसके न होने का पता पड़ता है।

प्रश्न यह है कि क्या ज्ञानियों को यह सृष्टि नहीं भासती? इसका उत्तर यह है कि ज्ञानी को सृष्टि इस प्रकार भासती है, जैसे वैज्ञानिक को सिनेमा में दृश्य भासते हैं, वे प्रकाश के अतिरिक्त कुछ नहीं है। ज्ञानी सृष्टि को बाजीगर की बाजी ही जानता है।

संसार का सौन्दर्य और आनन्द अविचार के कारण ही भासते हैं, परन्तु जब विचार से उसके आनन्द और सौन्दर्य का भासना निकल जाता है, तब उसमें से स्वत: ही वैराग्य आ जाता है। ऐसे निश्चय होने से उससे आसक्ति निकल जाती है।

जैसे कामी विषयी पुरुष स्वप्न में देखी गई स्त्री की प्राप्ति के लिए सपने के समय में करोड़ रुपये भी देना चाहे, किन्तु जागने पर उस स्वप्न की सुन्दर स्त्री सत् नहीं है। इसी प्रकार ज्ञानी जिसने संसार को दृढ़ता से स्वप्न के समान समझा है, वह उसके लिए कैसी आसक्ति रखेगा?

"पूर्ण ज्ञानी सागर के समान है, जो वर्षा के पानी तथा नदियों के पानी को अपने में मिला लेता है और उसमें कोई भी कमी अथवा बढ़ावा नहीं होता। कुछ ज्ञानी संसार को असत् समझते हैं। दोनों भावनाएं विषयों से बचने का उपाय है। कोई भी भावना धारण करके वासनाओं को मारना चाहिये। मन के मरने से ही ज्ञान होगा और सच्चा सुख प्राप्त होगा।"

(१२)

ज्ञान का सार*

सुन्दर, चन्द्र और नारायण बनें:- सुनना है समझने के लिए और समझना है आचरण के लिए। हमें चाहिए कि सुन्दर बनें, चन्द्र और नारायण बनें। सुन्दर अच्छे गुणों से होंगे। चन्द्र देखो कैसा शीतल प्रकाश देता है। हम भी शीतल प्रकाश देंगे कर्त्तव्य पालन से। कर्त्तव्य पालन में कष्ट तो आएंगे ही किन्तु तुम क्या चाहते हो? हमें पहले अपना लक्ष्य पहचानना चाहिये। यदि किसी से पूछा जाए कि तुम कहां जाते हो और वह कहे कि पता नहीं है। तो हमें हंसी आ जायगी। अपना लक्ष्य क्या है समझें। हम क्या चाहते हैं, वह हमें समझना चाहिये।

दौड़ किसके लिए:- तुम्हें चन्द्र (दीपचन्द्र बेलानी) ने बताया कि सभी सुख चाहते हैं। तुम यहां क्यों आए हो? तुमने सोचा कि लीलाशाह आया है जाकर उनके वचन सुनेंगे। नदी दौड़ती जाती है। क्यों? समुद्र से मिलन के लिए रात दिन वह दौड़ती रहती है। तुम भी आनन्द के लिए रात दिन दौड़ते रहते हो? तुम में से प्रत्येक की इच्छाएं अपनी हैं परन्तु वे सब किसके लिए हैं? किन्तु आनन्द चाहते हो तो पापों से दूर रहो। पाप तथा निर्बलता चली जाए तो दुःख नहीं रहेंगे।

* १४ सितम्बर १९५८ को स्वामी बोधराज मन्दिर अजमेर में किया गया प्रवचन।

पाप क्या है:- कुछ पूछते हैं कि पाप क्या है? पाप एक भूल है। भूल न होवे तो दुःख न मिले। पाप भूल तथा निर्बलता है। बेटी कैसी भी सुन्दर हो तो भी मन में पाप आता है? नहीं। मन को समझाओ, सोचो कि सुन्दरता क्या है? यह सुन्दर खाल उसके भीतर क्या है। मांस, रोग (पीप) और हड्डियां। दुनिया में गंदी चीज देखनी हो तो शरीर को देखो। शरीर सुन्दर नहीं है किन्तु बुद्धि। बुद्धि की महिमा निःसन्देह है। लेकिन शरीर तो गन्दा है। बीमारी और बुढ़ापे में शरीर को देखो। जिस चीज से यह शरीर बना है, उसे देखो। मन को किसी न किसी प्रकार वश में करना है। मन स्थिर (एकाग्र) न होगा और सुनते ही न होंगे तो समझोगे क्या? मन को वश में कैसे करोगे, तुम्हारा लक्ष्य तुम्हें तब तक नहीं मिलेगा, जब तक तुमने मन को स्थिर नहीं किया है।

अंध श्रद्धा छोड़ो:- माताएं विभिन्न आशाएं करती हैं। उसके लिए उन्हें चाहिए कि पापों से दूर रहें। स्वच्छन्दता छोड़ो। पाखण्डी साधुओं से दूर रहो। मैं गुरुओं का खण्डन नहीं करता। गुरु के सिवाय ज्ञान नहीं मिलेगा, परन्तु नारी के लिए पति गुरु है। माताओं को निश्चय है कि गुरु के बिना गति नहीं। साधु उसका उल्टा लाभ लेते हैं। कहते हैं 'कान में कुरु, तू मेरी चेली, मैं तेरो गुरु; नाणे (धन) की थैली मेरे सामने रख, तू चाहे जी चाहे मर।" माताओं में बहुत श्रद्धा है। भले रखें, परन्तु देश काल का विचार करें। नारायण (प्रो. नारायणदास भम्भाणी) ने तुम्हें बताया कि नारायण अन्तःकरण में है। जैसे फूलों में सुगन्ध, लकड़ियों में अग्नि, तिलों में तेल है; वैसे हृदय में ही भगवान है। हृदय में जो भगवान है, उसे ही गुरु बनाना चाहिए।

माता सीता की महिमाः- माता सीता नरक में गई अथवा स्वर्ग में? उसने कितने गुरु किए थे। उसने क्या किया? केवल पति को साथ दिया। वाह, भारत में क्या परन्तु संसार में उसकी कीर्ति गाई जा रही है। 'जय सीताराम' गा रहे हैं। पहले सीता उसके पश्चात् राम। पहले लक्ष्मी बाद में नारायण। मनुस्मृति पढ़कर देखो, उसमें लिखा है कि 'नारी जाप, तप करने से ऐसी शुद्ध नहीं होती, जैसी पतिव्रता होने से।' सीता ने महल त्याग दिए, घासफूस की झोंपड़ियों में रही। कन्दमूल खाए। १४ वर्ष तपस्या की तो उसकी प्रशंसा की जा रही है और स्वर्ग में गई।

बच्चों का सुधारः- 'चेतना मुखी सदा सुखी।' ज्ञान कैसे होता है? माता से। शास्त्रों में कहा गया है कि 'मातृ देवो भवः, पितृ देवो भवः, आचार्य देवो भवः।' माता के पश्चात् है पिता और उसके पश्चात् गुरु। बच्चे सुधरे तो मानो संसार सुधर गया। यदि नेता ध्यान दें तो बच्चों का सुधार हो जाये। वे अस्पतालों और जमीनों पर ध्यान दे रहे हैं परन्तु बच्चों पर ध्यान नहीं देते।

स्वास्थ्य और भोजनः- सुख के लिए स्वास्थ्य आवश्यक है। तन स्वस्थ तो मन स्वस्थ। शरीर की उन्नति व्यायाम, भोजन आदि से होती है। भोजन कैसे करें, उसका विचार रखना है। खाना खाने का ढंग आ जाये तो भारत में भोजन पांचवाँ भाग बच जाए। भोजन में बड़ी शक्ति है परन्तु हम खाने पर बैठेंगे तो भी बोलते रहते हैं। भोजन ऐसे नहीं किया जाता। खाना बिलकुल चबाकर खाना चाहिए। शेर से गुण ग्रहण करो। न खाने योग्य चीज वह सात दिन की भूख

होने पर भी नहीं खाता। आधा तोला से अधिक दूध मुंह में नहीं डालना चाहिए। घूंट घूंट करके पीएंगे तो एक पाव ढाई पाव जितनी शक्ति देगा। गीता विश्व ग्रन्थ है। वह सब सूत्र रूप में बताता है। खाने के लिए भी बताता है कि योग्य खाना खाना चाहिए। राम की जय कहोगे तो तुम्हारी जय होगी। जय अर्थात् मंगल। खाना नियम पर और चुपचाप खाओ। शरीर से इतना काम लेते हो, उसे खाना देने के लिए घंटा आधा-घंटा लिया तो क्या है। शराब, मांस आदि से दूर रहो। वैद्य, डाक्टर, हकीम जैसे बढ़ते जाते हैं, वैसे बीमारियां भी बढ़ती जाती हैं। मैं चाहता हूं कि बीमारियों को भगाने के लिए चबा कर खाओ। व्यायाम व प्राणायाम भी स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं। जिसका मन और बुद्धि वश में है, वह हीरे (वीर्य) को बचा सकेगा। ग्रास को दांतों जितना अर्थात् ३२ बार चबाना चाहिए। ग्रास चबा कर पिया करो। मिर्च मसाले भले खाओ किन्तु थोड़े। भोजन पर जोर क्यों देता हूं, क्योंकि भोजन से ही शरीर चलता है। 'तुझे क्या गैर से मतलब, तू अपनी तोड़ निभाता जा।' जो सादा खाना मिले वह भगवान का प्रसाद जानकर खाओ। मैं तो डाक्टरों और हकीमों को बिनती करूं कि लोगों को बताएं कि खाना चबाकर खाएं। चार ग्रासों की अभी भूख हो तो खाना छोड़ दो।

गोपीचन्द को उसकी माता ने कहा था कि चका चक माल खाना। गोपीचन्द की शंका पर उसने जो उत्तर दिया था, उसका तात्पर्य था कि भूख लगने पर खाना। खाने का अधिकार उसको है, जिसको भूख हो। दूसरी बात उसे कही 'पलंगों पर सोना' पुत्र गोपीचन्द के शंका करने पर उसकी माता ने उत्तर दिया कि तुझे बहुत नींद आवे, तब सोना फिर

पत्थरों पर भी आराम से सो सकेगा। चबा कर खाने से कब्ज दूर होता है, दांत दृढ़ होते हैं और भूख बढ़ती है।

भगवान कहां:– सत्संग में जाओ परन्तु वह हो सच्चा सत्संग। स्कूल भगवान का दरबार है। स्कूलों के द्वारा लोग बड़े पदों पर पहुंचते हैं। विद्यार्थियों को अध्यापकों का सम्मान करना चाहिए। मन और तन स्वस्थ हो, निश्चय बुद्धि हो तो फिर माताएं ठगी न जा सकेंगी।

भगवान तुम्हारे अन्दर है, उसे अपना गुरु बनाओ। प्राणायाम करते रहो। प्राण महाशक्ति है। आयाम अर्थात् उसे वश में रखना। माताओं को चाहिए सीता के समान पति का साथ दें।

(१३)

साधना*

पहले योग साधनों का वर्णन किया गया है। समाधि के लिए आसन साधने की आवश्यकता है। उनमें से दो मुख्य हैं (१) पद्म आसन (२) सिद्ध आसन। इनमें से सिद्ध आसन सरल है। पैर की एड़ी गुदा और जनन्य इन्द्रिय के बीच में रखकर दूसरे पैर की एड़ी पहले पैर के ऊपर रखकर बिलकुल सीधा होकर बैठना चाहिए और कहीं भी देखना न चाहिए। एक आत्मा का विचार रख कर अन्य सभी विचार छोड़ देने चाहिए। उस समय भगवान का स्मरण करना चाहिए और आत्म-चिन्तन करना चाहिए। यह अभ्यास साढ़े तीन घण्टे होने से आसन सिद्ध होगा।

प्राणायाम निम्न प्रकार से करना चाहिए:- पहले पूरक करना चाहिए अर्थात् लम्बी सांस भीतर ले जानी चाहिए और वहां कुछ समय के लिये रोकना चाहिए। फिर धीरे-धीरे बाहर निकालना चाहिए, उसे रेचक कहा जाता है। फिर बाहर निकालकर रोकना चाहिए, भीतर के रोकने को आन्तरिक कुम्भक और बाहर रोकने को बाह्य कुम्भक कहते हैं। यह अभ्यास बार बार करना चाहिए। इस से मन और इन्द्रियां वश में होती हैं। प्राण, मन, इन्द्रियों और वीर्य का एक दूसरे से सम्बन्ध है।

---

* १३ अक्तूबर १९५९ पर जेतपुर में किया गया प्रवचन

नियम के साथ अभ्यास करते हुए, ॐ का जाप और ब्रह्म का चिन्तन करते हुए धीरे धीरे समाधि को प्राप्त किया जाता है।

यदि मन वश में नहीं हुआ तो पांच विषयों में फंसे रहेंगे और ब्रह्म प्राप्ति का अखण्ड आनन्द प्राप्त न कर सकेंगे। जब विषयों में फंसे रहेंगे, तब बोध कहां से होगा? जब विषयों से छूटोगे, तभी आत्मा का सुख मिलेगा।

जिस मनुष्य के पिछले जन्म के निष्काम कर्म किए हुए हैं, उसका इस जन्म में आत्मा में प्रेम होता है और वह दुनिया के पदार्थों को तुच्छ समझता है। ऐसे वैराग्य से ही हृदय शुद्ध होता है। शुद्ध हृदय से मन वश में होता है और चित्त की शान्ति प्राप्त होती है। जैसे बारूद पहले विद्यमान होगा तो उसको दियासलाई लगाने की आवश्यकता होती है। वैसे वैराग्यवान शुद्ध चित्त वाला है, उसको सत्गुरू अपने उपदेश से जगाता है।

आत्मज्ञान के लिए राम कृपा, सत्गुरू दया और साधु-संग की आवश्यकता होती है। वे मिलें तो बस बेड़ा ही पार। उपासना एवं निष्काम कर्म से अन्तःकरण शुद्ध होता है और राम कृपा होती है। सत्गुरू दया यह है कि जो उपदेश वह करे, उस पर आचरण किया जाय। वह रास्ता बतायेगा, परन्तु चलना हमें होगा।

(१४)

जीवन का उद्देश्य*

मनुष्य जन्म दुर्लभ है, बार बार नहीं मिलेगा। 'अब के बिछड़े कब मिलेंगे, जाय पड़ेंगे दूर।' बड़े में बड़ा दुख है जन्म मृत्यु का और बड़े में बड़ा सुख है मुक्ति का। अतः ऐ प्यारे, आज ही शुद्ध संकल्प करो कि इस जन्म में ही हम मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

विचार, वाणी और व्यवहार में सच्चे रहने से मन पवित्र होगा। बुरे कर्म करने वाला कभी न चाहेगा कि दुख मिले और मेरी निन्दा हो। दैवी सम्पदा धारण करने से मुक्ति मिलेगी और जन्म मृत्यु का चक्र छूटेगा। इन दैवी सम्पदा के गुणों का 'श्रीमद् भगवत् गीता' के सोलहवें अध्याय के तीन श्लोकों में वर्णन हुआ है।

मनुष्य शरीर, जाति, वर्ण, आश्रम, धर्म आदि से अपनी एकता करके, उनका अभिमान करने लगता है, उन्हें अपना जानता है। उनके अनुसार स्वयं को कितने ही बन्धनों में बांधकर राग द्वेष करने लगता है। तब उसका मन अशुद्ध रहता है। अतः साधक को यही विश्वास एवं निश्चय धारण करना चाहिये कि मैं शरीर नहीं हूं। मुझे मनुष्य शरीर भगवान की कृपा से साधन के लिए मिला है। यह निश्चय करके शरीर में सुख की भावना न रखनी चाहिए। उसे

* १४ अक्तूबर १९५३ को जेतपुर में किया गया प्रवचन।

अपना न मानना चाहिये। जो प्राप्त हो, उसका शुद्ध उपयोग करना चाहिये। प्राप्त हुए का शुद्ध उपयोग और जो न प्राप्त हो, उसकी इच्छा न करने से राग की निवृत्ति होगी। राग की निवृति होने से द्वेष स्वयमेव निकल जाएगा और राग-द्वेष के दूर होने से निर्वासना आएगी, तब कोई इच्छा उत्पन्न न होगी। प्रत्येक प्रकार की इच्छा दूर होने से चित्त शुद्ध रहेगा। चित्त के शुद्ध रहने से प्रेम-योग व बोध स्वयमेव उत्पन्न होंगे।

वर्तमान परिवर्तन शील जीवन में मनुष्य को सत्ता एवं प्रभुता की प्रीति हो गई है। इसका मूल कारण है अपने में अपूर्णता अनुभव करना। अभेद भाव और भेद भाव का आपस में सम्बन्ध है, दूसरा कुछ नहीं है। यदि शरीर और बुद्धि आदि हटाये जायें तो सम्भवतः ऐसा न हो। तब जड़-भावना चेतन भावना में बदल जाएगी।

मैं शरीर हूं, इस भावना के मिट जाने से देह धर्म की आसक्ति हट जाएगी। उस के हटने से शरीर और उस से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों और बातों में सत्ता की किंचित् मात्र भी गंध न रहेगी। तब राग वैराग्य में और भोग योग में परिवर्तित हो जाएंगे।

जिसके साथ और जहां स्वरूप की एकता होती है अर्थात् जिसको अपना जाना जाता है, उसका मोह और उसके साथ प्रेम स्वयंमेव हो जाता है। प्राणों की जो वास्तविक आवश्यकता है, जिसकी पूर्णता अत्यन्त आवश्यक व स्वाभाविक है, उससे निराश होने प्रमाद के अतिरिक्त और कुछ नहीं, क्योंकि स्वाभाविक आवश्यकता की पूर्ति और अस्वाभाविक इच्छाओं की निवृत्ति करना ही सच्चा पुरुषार्थ है।

पहले बताया गया कि प्राणी जिससे अपना आप मिलाता है, उसे उसकी सिद्धि प्रतीत होने लगती है। अतः साधक को विचार करना चाहिये कि मैं, जो स्वयं को मनुष्य मानता हूं, वह पक्षियों, पशुओं आदि प्राणियों से अधिक कौन सी विशेषता रखता है? आहार, निद्रा, मैथुन, विषय भोग आदि भोगने का सुख और उनके वियोग और मृत्यु पर दुख तो अन्य जीवों एवं मनुष्य में समान हैं, अपितु पशुओं आदि का जीवन मनुष्य की तुलना में अधिक नियमों वाला और प्रकृति के अनुसार है। विचार करने से विदित होगा कि मनुष्य में दूसरों की तुलना में विवेक शक्ति अधिक है। जिस से वह यह समझ सकता है कि मैं कौन हूं और मुझे क्या करना चाहिये। किन्तु यदि मनुष्य इस विवेक शक्ति का आदर न करे और उसका शुद्ध उपयोग न करे, भोगों के सुखों में जीवन बिताता है तो पशुओं तथा पक्षियों और उसके मध्य में भेद कौन सा? पशु पक्षी आदि जीव तो अपने कर्म का फल भोग करके, वह पूरा कर रहे हैं। परन्तु विवेक का आदर न करने वाला मनुष्य तो अपने उल्टे नये कर्मों से स्वयं को जकड़ता रहता है और अपने चित्त को अधिक अशुद्ध बनाता रहता है। अतः साधक को चाहिये कि अपने विवेक का आधार लेकर यह बात समझें कि यह मनुष्य शरीर उसे किस के लिए मिला और उसका उपयोग कैसे करना चाहिये।

विचार करने से ज्ञात होगा कि यह जीवन साधन धाम (साधन का स्थान) है। उसमें प्राणी अपना चित्त शुद्ध करके मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। चित्त की शुद्धि के लिए देह का होना आवश्यक है। साधक ऐसा संकल्प न करें कि उसकी पूर्ति के लिए उसका अन्य किसी पर आधार है,

जिसको वह स्वयं पूर्ण नहीं कर सकेगा। जो वह स्वयं पूर्ण नहीं कर सकता और दूसरों द्वारा प्राप्त की हुई वस्तु प्राप्त करने के लिए संकल्प करना है, तब उसके संकल्प कैसे भी शुद्ध क्यों न हों, तो भी उससे उसका चित्त शुद्ध न होगा। अपने संकल्पों का दूसरों के द्वारा पूर्ति करने वाला उसका ऋणी होता है और उसका चित्त अशुद्ध होता है, तब पराधीनता की वृद्धि होती है और पराधीन प्राणी कभी भी सुखी नहीं हो सकता।

अतः दूसरों पर अपना अधिकार न मानना चाहिये, परन्तु अपने द्वारा किये गये योग्य संकल्पों को पूरा करना चाहिये अन्यथा राग की वृद्धि होती है और अन्तःकरण अशुद्ध होता है, जिसके कारण फिर संकल्पों की बाढ़ आती है। अतः साधक को प्रत्येक प्रवृत्ति के द्वारा दूसरों के अधिकार और संकल्पों की रक्षा और पूर्ति करनी चाहिये। अतः यह अभिमान नहीं आना चाहिये कि मैंने दूसरों का कोई उपकार किया है, ऐसा समझना चाहिये कि जो उन्हें दिया जाता है, वह उनके लिए ही प्राप्त हुआ है और उसमें मेरा कुछ नहीं है। जैसे कोई डाकिया डाकखाने से प्राप्त की हुई चीजें पार्सल आदि पत्ते वाले स्थानों पर लोगों को पहुंचाता है, परन्तु इसलिए उस पर कोई अनुग्रह नहीं करता। हां, वह यह बात अनुभव करता है कि मैं अपने कर्त्तव्य का पूरा पूरा पालन करके सरकार की प्रसन्नता प्राप्त कर सकूंगा। इस प्रकार यदि हम भी व्यवहार करेंगे तो हम पर परमात्मा की कृपा और प्रसन्नता होगी।

(१५)

ज्ञानी और संसार*

एक जिज्ञासु ने प्रश्न किया कि 'स्वामी जी! ज्ञानी को संसार सपना कैसे प्रतीत होता है? यदि सपने की नाई है तो फिर व्यवहार किसका? यदि जग है स्वप्न तो फिर ज्ञानी किसका?'

स्वामी जी ने मुसकराकर उत्तर दिया– "बेटा! ज्ञानी सदैव कमल के फूल की भांति निर्लेप रहते हैं। खरबूजा बाहर से फांके फांके होता है, किन्तु भीतर से मिला हुआ है। इस प्रकार ज्ञानी दुनिया में रहते हैं, बाहर से उनका आकार भिन्न-भिन्न, किन्तु भीतर में एक रस। वे संसार में रहते हुए संसार के नहीं हैं। बाहर से कर्त्ता हैं, लेकिन भीतर में अकर्त्ता।

दुख सुख दोनों सम कर जानो, मान और अपमाना।
हर्ष शोक ते रहे अतीता, तिन जगत न पहचाना।।

एक विद्यार्थी सपने में देखता है कि अध्यापक मुझे पढ़ा रहा है और अन्य सौ विद्यार्थी भी विद्या ले रहे हैं, किन्तु जागने पर सब समाप्त था। वह अपने आप में स्थित है अन्य कुछ भी नहीं है। ज्ञानी भी इस प्रकार अपने आप में स्थित रहता है, उसे स्वयं के अतिरिक्त अन्य कुछ भी भासता नहीं हैं। उन पर सांसारिक बातों का कोई भी प्रभाव नहीं होता है।"

* ३१ जनवरी १९५५ को आगरा में किया गया प्रवचन।

प्रसन्नता और अप्रसन्नता:– मन की प्रसन्नता और अप्रसन्नता का आधार अनुकूलता और प्रतिकूलता पर है। जब कोई चीज मन में अनुकूल है, तब मन का झुकाब उसकी ओर होता है और मन की एकाग्रता होती है और मन स्थिर होता है, जिससे उस विषय से कुछ समय के लिए सुख भासता है। अनुकूल वस्तु के प्राप्त होने से चित्त में जो लहरें उठती हैं, वे वास्तव में उस महान आनन्द रूप चेतन की छाया है। वह सच्चा आनन्द नहीं है।

दु:ख फिर क्यों प्राप्त होता है? मन के विरुद्ध जब कोई बात होती है, तब उस प्रतिकूलता के कारण ही दु:ख भासता है। जब किसी शत्रु को दूर से ही आता देखा जाता है तो मन में बेचैनी आकर निवास करती है और दुख की लहर उत्पन्न होती है। यह मन की प्रतिकूलता (विरुद्ध होने) के कारण होता है। मन शत्रु को देखना नहीं चाहता, जिससे उसके लिए उसे घृणा उत्पन्न होती है।

द्वैत और सुख:– अज्ञानी सर्वदा अग्नि रहित जलते-पचते रहते हैं। ऐसा द्वैत के कारण है। अत:

दुइ दूर करो, कुछ और नहीं,
तुम शांत करो, कुछ शोर नहीं,
तुम साध बनो, कोई चोर नहीं।

ज्ञान:– आत्म ध्यान से भ्रान्ति भाव नष्ट होता है। आत्म ज्ञान होने से मन स्थिर होता है, अज्ञान का पर्दा हटता है, अपना साक्षात्कार होता है और जैसे बत्ती जलाने से वर्षों का अन्धेरा दूर होता है, वैसे ज्ञान होने से मन की मलिनता दूर होती है और हृदय में सच्चा प्रकाश होता है।

---

(१६)
योग के अंग*

मूर्खता:– दस मूर्ख यात्रा पर चले। रास्ते में अपने को गिनने लगे कि कहीं कोई गायब न हो गया हो। एक व्यक्ति ने सबकी गिनती की, किन्तु उसने स्वयं को नहीं गिना तो नौ हो गये। फिर दूसरे व्यक्ति ने गिनती की, परन्तु उसने भी स्वयं को नहीं गिना तो उसने भी नौ गिने। इस प्रकार दसओं व्यक्तियों ने ही गिनती की, किन्तु प्रत्येक स्वयं को न गिन कर नौ-नौ समझने लगा। अन्त में उन्होंने समझा कि एक व्यक्ति गुम हो गया है, अत: वे बहुत चिन्ता में पड़ गये। वहां से एक साधु गुजरा, उनकी मूर्खता जानकर, उन्हें गिनती करके दिखाया तो दस हुए। उसने उन्हें बताया कि "तुम दस हो, परन्तु अपने को न गिनकर नौ बनते हो।"

इस प्रकार हम संसार में उन यात्रियों के समान हैं, जो स्वयं को भुला बैठे हैं। जब कोई महापुरुष मिलता है, तब वह हमें अनुभव कराता है कि हम यह शरीर, इन्द्रिय आदि नहीं हैं, किन्तु आत्म स्वरूप हैं।

वैराग्य और अभ्यास:– मन को वश में करने के लिए वैराग्य और अभ्यास की आवश्यकता है। इनके अतिरिक्त चित्त शान्त नहीं होगा। दुनिया देखने मात्र बनती है, परन्तु वास्तव में एक सत् चित्त, आनन्द स्वरूप ही सर्वव्यापक है।

* २८ अक्तूबर १९५८ को जेतपुर में किया गया प्रवचन।

आनन्द किसका:- शरीर नाशवन्त है। संसार के सब पदार्थ भी मिथ्या ही हैं, केवल आत्मा ही सत्य और आनन्द-स्वरूप है। अन्य पदार्थों से जो आनन्द प्राप्त होता है, वह भी आत्मा का आभास ही है। आम खाते हो तो वह तुम्हें मीठा लगता है और समझते हो कि उसमें से आनन्द आता है। किन्तु वह आनन्द आम से तुम्हें नहीं मिलता, परन्तु आम खाते हुए उस में मन स्थिर होता है, तब उस में से तुम्हें आनन्द आता है, परन्तु वह क्षणभर है। जब जीव का मन बिलकुल स्थिर होता है और आत्मा में लीन होता है, तब उसे सच्चा और दृढ़ आनन्द प्राप्त होता है। अन्य पदार्थों से प्रेम निकाल कर, एक सत् चित् आनन्दस्वरूप आत्मा में प्रेम रखो, उसका सदैव चिन्तन करते रहो तो अन्त में उस आनन्द में मगन रहोगे।

पाप और पुण्य:- पाप का अर्थ है भूल और निर्बलता पाप का परिणाम दुःख और पुण्य का परिणाम सुख है। परमात्मा ने हमें कर्म करने में स्वतन्त्र रखा है, परन्तु कर्मों के फल भोगने में परतन्त्र हैं। उनका फल परमात्मा ने अपने वश में रखा है। भला करोगे तो भला होगा। जैसा जैसा कर्म करोगे, परमात्मा वैसा वैसा फल देगा।

यज्ञ:- यज्ञ अनेक हैं। अतिथि यज्ञ, देव यज्ञ, भूत यज्ञ, ब्रह्म यज्ञ, दान यज्ञ आदि। मेहमान की सेवा अतिथि यज्ञ है। सात्विक भोजन बनाकर, उसमें से कुछ अग्नि में डालना भी देव यज्ञ है। कुत्ते बिल्ली को खाना देना, पक्षियों को अन्न-पानी देना, गाय को खिलाना पिलाना आदि भूत यज्ञ है। हमारे माता-पिता और अन्य बड़े जीवित हों अथवा मर गये हों, उनकी सेवा और उनके निमित कुछ करना पितृ यज्ञ है।

(१७)

बच्चों को रहन सहन की सीख*

मन्दिर, घर और स्कूल बिलकुल पवित्र रखने चाहिये। इन तीनों की पवित्रता पर विशेष ध्यान देना चाहिये। यदि इन तीनों का सुधार हो गया तो बेड़ा ही पार।

मन्दिर में किसके लिए जाना होता है? भगवान के ध्यान के लिए। आज कल मन्दिरों का हाल देखो तो कैसा है? चर्श और गांजे का प्रचलन लगा पड़ा है। जिज्ञासुओं को भ्रमों और भ्रांतियों में बहकाया जा रहा है। आत्मिक विद्या का तो नाम भी नहीं।

घर में देखो तो चारों ओर अशान्ति की आग लगी हुई है। घर में शान्ति न हो तो घर किस काम का हुआ? पक्षी आदि भी अपने घोंसले में विश्राम पाने के लिए जाते हैं। जंगल के जानवर आदि भी अपनी गुफाओं में जाकर वास करते हैं। किसके लिए? विश्राम के लिए। मनुष्य को भी यदि घर में विश्राम न मिला तो फिर वह घर तो नहीं कहा जाएगा। रामायण पढ़ने से हमें कौन सी शिक्षा मिलती है? राम की मर्यादा थी। रामायण पढ़ने से हमें यह शिक्षा मिलती है कि गृहस्थ आश्रम में पत्नी को पति से किस प्रकार चलना चाहिये। पति के पत्नी के प्रति कौन से कर्त्तव्य हैं। भाई का

* जून १९५९ को आगरा में किया गया प्रवचन।

भाई से कैसा प्रेम का नाता होना चाहिये। प्रत्येक प्राणी को अपना कर्त्तव्य किस प्रकार पालन करना चाहिये?

बचपन से ही बालक एवं बालिकाओं के जीवन पर ध्यान देना चाहिये। यदि बचपन में सूक्ष्म दृष्टि से उनके रहन-सहन खान-पान, बोल चाल, शिष्टता और सदाचार पर ध्यान दिया जाय तो फिर बड़े होने पर सिर दर्द की आवश्यकता ही न हो। सम्बन्धी ऐसा नहीं समझते कि बालक भविष्य के पिता हैं। बालक खराब अर्थात् संस्कार खराब। बालकों को बचपन से ही सफाई पर ध्यान दिलाना चाहिये। उनमें बचपन से ही प्रातः उठने की आदत डालनी चाहिये। ब्रह्म मुहूर्त में उठने से आयु, बुद्धि और बल बढ़ता है। उन्हें बचपन से सिखाना चाहिये कि खाना चबाकर खाना चाहिये। कम से कम ३२ बार प्रत्येक ग्रास को चबाकर खाना चाहिये। यदि खाना अपूर्ण चबाकर खाया जाएगा तो पाचन शक्ति खराब हो जायेगी। यदि पाचन शक्ति खराब हुई तो बीमार होना पड़ेगा। यदि बीमार होना पड़ा तो फिर पूरे घर में अशांति फैल जाएगी।

घर में ही बच्चों को दैवी सम्पदा के गुण सिखाने चाहिये माता पिता को चाहिये कि घर में बच्चों के सामने कदापि बुरे वचन न बोलें। उनसे कभी विवाद की बातें न करें। उन्हें कभी डराना न चाहिये। माता यदि उन्हें बचपन से ही डराएगी कि "शांति करो, ताऊ आ रहा है। चुप रहो नहीं तो भूत उठाकर ले जाएगा। उन्हे चोर डाकुओं की बातें बताएगी तो फिर उसके बच्चे बड़े होकर निडर कैसे होंगे? वे बड़े होने पर अवश्य ही कायर और डरपोक हो जाएंगे। अतः उन्हें बचपन से ही प्रातः सायं प्रार्थना करना सिखाना

चाहिये। उनके भोजन पर विशेष ध्यान देना चाहिये। उन्हें सात्विकी भोजन करना चाहिये। भूल चूक से भी उन्हें तामसी और रजोगुणी भोजन न खिलाना चाहिये। उन्हें लाल मिर्च, चटनी, कुल्फी, गोल गप्पा कभी खिलाने नहीं चाहिये। उन्हें समझना चाहिये कि "संग तारता और कुसंग डुबोता है।" बालक इंजिन के समान हैं। गुरू एवं रिश्तेदार एक प्रकार के ड्राईवर हैं। जैसे ड्राईवर बदलते रहते हैं, वैसे ही गुरू और रिश्तेदार भी हैं। स्कूल के समय अध्यापक और घर में रिश्तेदार बालक के ड्राईवर हैं। घर में रिश्तेदारों का बड़ा कर्त्तव्य है। उन्हें देखना है कि वह किसका संग करता है, क्या खाता है, क्या करता है, कब सोता है, कब उठता है। व्यर्थ ही तो समय नहीं गंवाता। इधर उधर भटकता फिरता तो नहीं और वह प्रातः सायं व्यायाम करता है अथवा नहीं। उन्हें बालक के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति का भी खयाल रखना है। यूरोप तथा अमेरिका में बड़े घरों में रिश्तेदार सदैव बच्चों को काम में तत्पर रखते हैं। रिश्तेदार जैसे लड़कियों के रहन-सहन पर ध्यान देते हैं, उसी प्रकार यदि लड़कों के रहन-सहन पर ध्यान दें तो उन्हें बच्चों के बड़े होने पर शिकायत करने का कोई कारण ही न रहे।

स्कूलों में भी सदैव आदर्श अध्यापक होने चाहिये। अध्यापक का बालक के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अध्यापकों को चाहिये कि बचपन से ही बालकों में अच्छे विचार फूंके, जैसे एक खराब आम पूरे टोकरे को खराब कर देता है, वैसे क्लास में एक लड़का खराब हो गया तो संभव है कि वह सम्पूर्ण क्लास को खराब कर दे।

अतः अध्यापकों को जासूस रखने चाहिये। उन्हें बालकों के जीवन पर पूरा पूरा ध्यान देना चाहिये। उन्हें अच्छी-

अच्छी नैतिक कहानियां सुनानी चाहिये। उनमें शूरवीरता के विचार उत्पन्न करने चाहिये।

अतः उनके रहन-सहन पर पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिये। उनमें अच्छे-अच्छे संस्कार फूंकने चाहिये। खराब लड़के स्कूल की तबाही का कारण हैं। विद्यार्थी और गाली गलोच! चुगली! यह बात तो उनके सपने में भी न होनी चाहिये। विद्यार्थी होकर चुगली लगाएगा, ईर्ष्या करेगा, बैर रखेगा, स्वार्थी बनेगा तो फिर बड़े होने पर उससे कैसी आशा रखी जा सकती है?

अध्यापकों को चाहिये कि बच्चों को अच्छी अच्छी पुस्तकें घरों में पढ़ने के लिए उपलब्ध करके दें, ताकि उन्हें व्यथ भटकने का अवसर न मिले। उन्हें सदाचारी बनने के लिए हर प्रकार का यत्न करना चाहिये।



(१८)

आनन्द कहां?*

संतोष सुमति सादगी बख्श करो भगवान,
सब का बेड़ा पार हो, दीजिये भक्ति ज्ञान।

लोग समझते हैं कि दुनिया के विषयों में वास्तव में सुख नहीं है। तब सुख कहां है? जब गाढ़ निद्रा से उठा जाता है, तब आनन्द भासता रहता है। इससे सिद्ध होता है कि वास्तविक सुख अथवा आनन्द विषयों में नहीं, परन्तु गाढ़ निद्रा में है। नींद से उठने पर कहते हो कि अत्यन्त आनन्द में सोया पड़ा था। आपका यह कहना दिखाता है कि गहरी नींद सुषुप्ति अवस्था में ही आनन्द है। इस अवस्था में आनन्द क्यों विदित होता है? क्योंकि उस अवस्था में मन एकाग्र होता है और उसमें आत्मा की छाया पड़ती है, तब सुख मिलता है अथवा आनन्द का आभास होता है।

तुम कहोगे कि स्वामी जी, ऐसा तो है, किन्तु हमें खोलकर समझाओ। अच्छा सुनो। बात तो बिलकुल स्पष्ट है। जब हमें कोई अच्छी चीज मिलती है अथवा किसी रिश्तेदार से मिलते हैं, तब हमें आनन्द प्राप्त होता है। तब हम समझते हैं कि वह आनन्द उस वस्तु के प्राप्त होने

* ६ जून १९६२ में नैनीताल में किया गया प्रवचन।

अथवा रिश्तेदार के मिलने से प्राप्त होता है। वास्तव में आनन्द तो उन से नहीं मिलता। जब कोई स्वस्थ नहीं है, तब वह मनोहर चीज प्राप्त हो अथवा वे मित्र आकर मिलें, तो भी उनके कारण आनन्द नहीं प्राप्त होता। स्वस्थ व्यक्ति को मनोहर चीज अथवा रिश्तेदार के मिलने पर आनन्द इसलिये मिलता है, जो उस समय मन एकाग्र होता है, किन्तु स्वस्थ न होने की अवस्था में उनके मिलने पर भी आनन्द इसलिए नहीं मिलता, जो मन स्थिर अथवा एकाग्र नहीं होता और उसमें चंचलता रहती है।

इसमें हमने देखा कि आनन्द मनोहर चीज अथवा मित्र में नहीं है। यदि उन में होता तो निरोगता अथवा बीमारी में वही आनन्द मिलता। स्मरण रखिये कि आनन्द तो भगवत् स्वरूप आत्मा में है। मन के एकाग्र होने से आत्मा की उसमें छाया पड़ती है और इसलिये आनन्द भासता हैं। जब मन चंचल रहता है, तब आनन्द नहीं मिलता।

लाखों में से कोई एक है, जिसे सच्चे सुख अथवा आनन्द का ज्ञान है। हम सभी आनन्द चाहते हैं किन्तु हम समझते हैं कि इन्द्रियों व विषयों शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध में सच्चा सुख है। बराबर भूखे को भोजन मिलता है तो उसे उसमें से आनन्द है? नहीं, उसे यदि अधिक खाना खिलाओगे तो उसकी पाचन क्रिया खराब होगी और अधिक दु:खी होगा। भोजन शरीर के लिये आवश्यक है, इसलिये भूख लगती है। उसे खाना दिया जाय तो शरीर को काम करने की शक्ति प्राप्त होती है, किन्तु अधिक खाने से पेट बिगड़ने से दु:ख भोगने पड़ेंगे और जो काम शरीर और मन से लेना है, वह वे न कर सकेंगे।

अत: शरीर को स्वस्थ एवं बलवान रखने के लिए खाना खाओ। बिलकुल चबाकर खाओ, ताकि भोजन शीघ्र पथ्य हो जाय और पथ्य बिगड़े नहीं। मैं तो बता रहा था कि सच्चा सुख किसी भी विषय में नहीं है, वह आत्मा में है। परमात्मा को पहचानने से ही सच्चा सुख मिलेगा। अत: उस सच्चे स्वामी को रात दिन, काम करते हुए, घूमते फिरते, उठते बैठते याद करना चाहिये। केवल माला उठाकर, वह सबके समक्ष फेरना और लोगों को दिखाने से लाभ नहीं प्राप्त होना है।

इसी प्रकार कर्त्तव्य पालन ही करना चाहिये, किन्तु हृदय में उस भगवान को स्मरण करना चाहिये। बाहरी दिखावे की आवश्यकता नहीं है। विषयों की आसक्ति को त्यागिये, बुरे विचारों एवं बुरे कर्मों से सदैव दूर रहो और सदैव भलाई और पुण्य के काम करो, अच्छे विचार संकल्प धारण करो। पुण्य और भलाई के कर्मों को करने से मन निर्मल होता है। ऐसा करने से दिल में परमात्मा का स्मरण आता है, उसके लिए प्रेम बढ़ता है और ऐसे ही आनन्द प्राप्त होता है।

(११)

बन्धन और मोक्ष का कारण*

मन जीते जग जीतः– शास्त्रों में लिखा है कि बन्धन और मोक्ष का कारण मन है। विषयों में लिपटा हुआ मन बन्धन का कारण है। जो मन विषयों से छूटा हुआ और शुद्ध है, वह मोक्ष अथवा मुक्ति का कारण है। अतः अहंकार त्याग करके नम्रता और प्रेम धारण करके, मन को जीतने का साधन सीखो।

सत्संग :– मन को जीतने के लिए सत्संग आवश्यक है। सत्संग का शाब्दिक अर्थ है, वह संग, जिसके द्वारा सत् वस्तु की प्राप्ति हो। सत्संग की अपार महिमा शास्त्रों में कथन की गई है। गुरु अर्जुन देव ने फरमाया है:–

मेरे माधव जी, सत्संग मिले सो तरिया,
गुरु प्रसाद परम पद पाया, सूखे काट हरइया।

अर्थात् हे प्रियतम, सत्संग द्वारा ही इस दुनिया रूपी महासागर से तैर कर पार पहुंच जाता है। सत्संग से ही सूखी लकड़ियों की भांति यह नीच मन हरा भरा होकर, परम आनन्द को प्राप्त करता है।

होत संगत सर्व सुख, दुख कुसंग की खान,
गंध्री अरु लोहार को बैठो देख दुकान।

तुलसी रामायण बाल काण्ड में भी कहा है।–
बिन सत्संग विवेक न होई, राम कृपा बिन सुलभ न सोई।

---

* ९ मई १९५९ को आगरे में किया गया प्रवचन।

इस जीव की उन्नति सत्संग से ही होती है। सत्संग से जीव का स्वभाव बदल जाता है। मानो जीव नया जन्म धारण करता है। कुसंग से जीव की हानि होती है। नीचों के संग से नीच हो जाना पड़ता है और उत्तम कोटि के महात्माओं के संग से श्रेष्ठ हो जाता है। जैसे चीटी गुलाब के फूल का संग करके, देवताओं और महात्माओं के सर पर बैठने योग्य बनती है, वैसे नीच आदमी भी महात्माओं के उत्तम संग को प्राप्त करके, ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त करता है।

एक जवाहरी अत्यन्त धनवान था। उसे एक पुत्र था। जिस समय जवाहरी का अन्तकाल निकट आया, उस समय पुत्र को बुलाकर कहने लगा कि जो धर्म कर्म मैं नित्य करता हूं, वह तुम करते रहना। तुम मेरा स्वरूप हो। एक नकली जवाहर पेटी में डालकर, वह पेटी पुत्र को दे दी और उसे कहा कि इस पेटी में एक अमूल्य जवाहर है। तुम्हें जब आवश्यकता पड़े, तब मेरे मित्र जयचन्द्र के पास पेटी दिखाकर, उसकी इच्छा अनुसार बेचना।

एक वर्ष के पश्चात् उसके बेटे को धन की कुछ आवश्यकता पड़ी। वह पेटी लेकर जयचन्द्र के पास गया। उसे कहा कि पिताजी की आज्ञा अनुसार मैं पेटी लेकर आया हूं। इसमें एक अमूल्य रत्न पड़ा है। आप मुझे अच्छे भाव में बेचकर दीजिये। जयचन्द्र ने पेटी खोलकर जवाहर जांच कर देखा फिर उसने उसके समक्ष उसी प्रकार बन्द करके दे दी और कहा कि अभी कुछ पैसे व्यय के लिए तुम्हें देता हूं। यह जवाहर जाकर रखो। जब कोई ग्राहक आयेगा, तब तुम्हें बताऊंगा। अभी तुम मेरी दुकान पर रहकर जवाहरों की परख करना सीखो। वह मान गया। वह लड़का धीरे-धीरे जवाहरों की परख करना सीख गया।

एक दिन जयचन्द्र ने लड़के को कहा कि वह जवाहर वाली पेटी ले आओ। लड़का पेटी ले आया और जवाहर निकालकर हाथ में देखने लगा। कहने लगा कि "यह तो शीशे का टुकड़ा है।" उसे देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। कहा कि "महोदय, आपने उस समय ही मुझे क्यों नहीं बताया कि जवाहर नकली है।" उसने उत्तर दिया कि "बच्चा! तुझे उस समय विश्वास न होता कि वह कोई नकली जवाहर है। अब तो तुम स्वयं ही परख कर सकते हो। तुम कहते हो कि केवल शीशे का टुकड़ा है।"

इस दृष्टांत का तात्पर्य यह है कि जैसे जवाहरी का बेटा झूठे शीशे को जवाहर मानकर स्वयं को धनवान समझ कर झूठी आशा रखकर बैठा था, उसी प्रकार वह जीव भी मिथ्या क्षण भंगुर शरीर, जो देखते-देखते नाश हो जाने वाला है, उसे भ्रांति के कारण सत्ता समझ बैठा है और सुख भोगने को झूठी इच्छा रखता है, परन्तु विचार करने से समझ पड़ेगी कि ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी सत् नहीं है। सब देखने मात्र है। उसकी सत्ता से रहित हैं। जैसे जवाहरी का बेटा समझने लगा। वैसे यह जीव भी ब्रह्मनिष्ठ गुरु के संग में ब्रह्मविद्या अद्वैत के अभ्यास करने से अमूल्य ब्रह्म रत्न की परीक्षा से ज्ञान को जानकर मोक्ष को प्राप्त करता है।

कबीर जांको खोजते, पायो सोई ठौर,
सोई फिर के तू भया, जांको कहता और।

आत्मा:– आत्मा ज्ञान स्वरूप एक रस है। उसमें अनेकता है ही नहीं। रात्रि को लालटेन लेकर भीतर कमरे में कोई जाता है। कमरे में कोई नहीं है। फिर दो सत्संगी कमरे के भीतर आते हैं; तो कहने में आता है, दो सत्संगी भीतर बैठे हैं। तीसरा आदमी भी वहां आता है तो कहा जाता

है कि तीन सत्संगी कमरे के भीतर बैठे हैं। यह भिन्नता किसमें आई? काला घोड़ा और सफेद घोड़ा कहते हो। भिन्नता किसमें है? रंगों में। घोड़ों की जाति तो एक है। उनमें तो कोई परिवर्तन नहीं है। प्रकाश तो कमरे में तब भी था। जब उसमें कोई नहीं था। फिर दो तीन सत्संगी आए, तो भी वह था। प्रकाश में तो भिन्नता नहीं रही। प्रकाश को जब कोई विषय मिला तो उसे प्रकाशित किया। प्रकाश ने विषय को अपने प्रकाश से रोशन किया। ज्ञान पहले है, फिर जब कोई विषय सामने आता है, उसे वह ज्ञात करता है। उसे प्रकाश ने प्रकाश से रोशन किया। ज्ञान में भेद बिलकुल नहीं है। भेद है तो विषयों में। विषयों में भांति भांति के रूप रस और गंध होते हैं। दुर्गंध, सुगंध, चित्र, सुन्दर चित्र, काला चित्र। वह भिन्न-भिन्न वस्तुओं का ज्ञान है। दो तीन सत्संगी बैठे हैं। उन दो तीन को हटाओ तो शेष क्या रहेगा? प्रकाश।

विषय को ज्ञान से अलग करो तो शेष क्या रहेगा? एक स्वयं ज्योति स्वरूप, अपने आपमें स्वयं में स्थित, जगमगाती ज्योति। विषय को जानने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। किन्तु ज्ञान को जानने के लिए किसी की भी आवश्यकता नहीं है।

उदाहरण लो:- कमरे में एक पुस्तक रखी है, पुस्तक को जानने के लिए किसकी आवश्यता है। (१) प्रकाश (२) आंख (३) मन की बृत्ति (४) चेतन प्रकाश को जानने के लिए चाहिये:- (१) आंख (२) मन की बृत्ति और (३) चेतन। आंख को जानने के लिए केवल दो आवश्यकताएं हैं:- (१) मन की बृत्ति (२) चेतन।

(२०)

मेरा निश्चय ?*

आत्मा स्वतः सिद्ध है। केवल महापुरुष एवं सत्गुरु ही उसका ज्ञान कराते हैं कि भाई, तुम तो स्वयं को शरीर समझ रहे हो, वह तुम नहीं हो। तुम आनन्द रूप परमात्मा हो और न जीव।

जो आंखें रूपों को देखती हैं, वे जड़ हैं। शरीर न सुन्दर है न प्रेम रूप और न सत् ही है। यह शरीर रुधिर, रोग, मांस, मैल और मुरदा है। इस जैसी गंदी वस्तु दूसरी कोई भी दुनिया में नहीं है। यह जो कुछ दीख रहा है, वह है ही नहीं, तो फिर मन जाएगा कहां। मन दौड़ता है, विषय रूप और गन्दे पदार्थों की ओर। वे विषय पदार्थ रूप हैं ही नहीं, ऐसा समझकर उनसे दूर रहना चाहिये, इसे वैराग्य कहा जाता है। अभ्यास का अर्थ है बार-बार आत्मा का चिन्तन करना अर्थात् स्मरण करना, उसका ध्यान करना, उसका ज्ञान कथन करना। आनन्द में स्थिर होने से मन वश में आ जाएगा, बहुत अभ्यास करने से मन का बिलकुल ही अभाव हो जाएगा।

शरीर का जो प्रारब्ध होगा, वैसे इधर उधर आता जाता रहेगा और काम आदि करता रहेगा। यह शरीर न पहले था, न पीछे रहेगा और न बीच में ही है। केवल सच्चिदानन्द

* १७ जुलाई १९६२ को नैनीताल में किया गया प्रवचन।

है। ज्ञानियों सत्पुरुषों का यही निश्चय है कि तुम भी सदैव यही निश्चय रखो कि सच्चिदानन्द ही सच्चिदानन्द हूं। सब कुछ मैं हूं और न अन्य कुछ।

मन इन्द्रियों और शरीर से काम काज करते हुए, लेन-देन करते हुए, खाते पीते, चलते फिरते, बोलते हुए अर्थात् सब कुछ काम काज करते हुए भी स्वयं को हर समय, हर पल में सच्चिदानन्द समझा जाय, फिर तो बेड़ा ही पार। पांचों उंगलियां घी में। तुम्हारा कार्य सम्पूर्ण हुआ। दूसरा न पहले था और न पीछे रहेगा और न बीच में। केवल एक तुम सच्चिदानन्द स्वरूप पहले भी थे, अभी भी हो और बाद में भी रहोगे, यह कहना भी उचित नहीं। जब एक सच्चिदानन्द ही सच्चिदानन्द है, तो फिर तुलना किससे की जाय।

आत्मा को सच्चिदानन्द रूप कहा जाता है। ज्ञान स्वरूप आनन्द स्वरूप इसलिए कहा जाता है, ताकि दूसरे पदार्थों और संसार के ज्ञान को छोड़कर झुके और आनन्द स्वरूप भी इसलिए कहा जाता है कि आप सभी संसारी आनन्दों को छोड़कर स्वयं सच्चिदानन्द में स्थित हो। सत्य तो यह है कि सच्चिदानन्द शांत ही शांत है, दूसरा कुछ भी नहीं।

ज्ञान और देखने में भेद है। ज्ञान की सहायता से ही नेत्र इस संसार के दृश्य को देखते हैं, नेत्र जड़ हैं, उनकी कोई सत्ता नहीं है, जो सत्ता हैं, वह मेरी जान है, फिर सच्चिदा-नन्द स्वरूप अब मैं सत्ता युक्त अथवा अस्ति, भाति और प्रिय व्यापक किसमें हो? अस्ति, भाति, प्रिय तो पदार्थों और देश काल करके कहा गया है, अतः देश काल पदार्थ तो बने ही नहीं, तो फिर अस्ति, भाति प्रिय किसमें हो। जब अन्य कुछ

हो, तब कहा जाय। किन्तु दूसरा कुछ भी नहीं, केवल एक सच्चिदानन्द ही सच्चिदानन्द मेरी जान है। सदैव अपने स्वयं सच्चिदानन्द के स्वरूप में स्थित रहना चाहिये, जो सर्वदा स्वयं में स्थित है।

कैसे, मैंने तुम्हें जो आत्म चिन्तन की बातें बताईं, वे समझी है थोडी बात, केवल बुद्धि में बैठ जाए। मुझे भी समझ में बैठ नहीं रही थी। फिर बहुत समय के पश्चात् सन्तों के संग में सत् शास्त्रों के विचार से पता लग गया। अतः तुम भी प्यारे सन्तों का संग करते रहो और सत् शास्त्रों को विचरते रहो। पञ्चीकरण बार-बार अच्छी तरह पढ़कर, समझ कर फिर योग वसिष्ट पढ़ो, तत्पश्चात् अधिक समझ में आएगा।

जिज्ञासु को बार-बार निश्चय है कि मैं अवश्य मोक्ष को प्राप्त करूंगा। यही एक बार-बार इच्छा करनी चाहिए। ज्ञानी जो भी व्यवहार करता है, वह सब आभास मात्र। सब आभास रूप समझ कर रहा है, परन्तु उसे भीतर शांति है। बाहर से यद्यपि कुछ विक्षप्तता आदि दीखती है, किन्तु वह परम शांति में ही स्थित है। हर काल में वह एक रस रहता है।

स्वयं को ऐसा समझना चाहिये कि मेरे हृदय में आनन्द की धाराएं बह रही हैं, उनमें लीन रहना चाहिए। जब यह मन बाह्य पदार्थों को सत्य समझता है, तब उनके पीछे दौड़ता है, परन्तु जब ये पदार्थ सत्य ही नहीं हैं अर्थात् हैं ही नहीं तो फिर इच्छा किसकी रहेगी।

(२१)

आत्म ज्ञान*

ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् भी सतगुरु, सत्शास्त्रों एवं सत्संग की स्तुति महिमा करते रहना चाहिये, जीवन पर्यन्त करना चाहिए। ऐसा समझकर उपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि सत्गुरु के यहां काम पूर्ण हुआ, जो जानने योग्य वस्तु थी, वह मैंने जान ली। आत्मा करके सभी एक हैं, किन्तु शरीर करके गुरु, शास्त्र एवं सत्संग की सेवा स्तुति करते रहना चाहिए और एक गुरु को ही सच्चा मित्र समझकर तन, मन तथा धन से जो भी शक्ति अनुसार सेवा पहुंचे, वह सदैव के लिए करते रहना चाहिये, क्योंकि गुरु की कृपा से जन्म-मृत्यु के चक्र से छूटकर पूर्ण आनन्द की सीमा पर चढ़कर पहुंचे हैं।

अरे, तुम वही ज्योति हो, तुम स्वयं सच्चा आनन्द रूप हो। तुम यह जो देख रहे हो, वे सब बुदबुदे के सदृश हैं, जो वास्तव में है ही नहीं, जो बुदबुदा तुम में से निकलकर तुझे प्रतीत हो रहा है, वह वास्तव में सपने के समान झूठा है। जगत बना ही नहीं। तुम कहोगे कि स्वामीजी, यह तो हम देख रहे हैं। वैसे तो स्वप्न में भी तुम समस्त पदार्थों को देख रहे थे, किन्तु जब जागते हो तो कहते हो कि अरे! यह सब झूठे चित्र थे, जो स्वप्न में सच्चे समझ बैठे थे। जागने से पता पड़ गया कि ये समस्त कल्पित हैं। वास्तव में हैं ही

* ३ सितम्बर १९३१ को उपलेटा में किया गया प्रवचन।

नहीं, न थे और न होंगे। वैसे स्वयं को जानें। जब ज्ञान में जागते हैं, तब तत्काल पता पड़ जाता है कि मैं ही एक सत्य स्वरूप हूं और समस्त तेरा ही विस्तार है, मैं ही केवल सच्चा आनन्द स्वरूप, शान्त, निर्विकार, शुद्ध, अखण्ड व्यापक, धैर्यवान, सब में और सबको आधार देने वाला अस्तित्व शक्ति दाता हूं। मुझसे अतिरिक्त दूसरा कुछ बना ही नहीं। एक ही है, एक के सिवाय अन्य शून्य ही शून्य समझो। "जिसने पहचाना स्वयं को, उसने पहचाना प्रभू को।" ये समस्त लीलाएं अपनी हैं, न ईश्वर, न भगवान, न बंदा, न खुदा। मनुष्य सभी साधन इसलिए करता है कि उसे अपने आत्मा का पूर्ण ज्ञान नहीं है। स्वयं को जानने से तत्काल पता पड़ता है कि इतना समय जो मैं दुःख कष्ट सहन कर रहा था और यत्न कर रहा था, वे सभी व्यर्थ थे। ध्यान, उपासना, योग, मन्त्र आदि सभी तब तक हैं, जब तक ज्ञान नहीं हुआ है। अन्य सभी यत्न छोड़कर आत्म ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि अन्तिम पड़ाव यही है। ऐसा न कहना चाहिए कि मैं दो तीन जन्म लेकर तत्पश्चात् ज्ञान प्राप्त करूंगा। नहीं नहीं, अरे, इसी जन्म में ही। भाग्य से तुम्हें यह मनुष्य जन्म मिला है, क्या पता कि दूसरा जन्म कैसी गति वाला मिले। फिर क्या वहां ज्ञान प्राप्त करोगे? नहीं नहीं, अभी कमर कस करके, जैसे महान आवश्यक कार्य सब दैनिक करने वाले समझते हो, वैसे सबमें एक आत्म ज्ञान प्रथम नम्बर समझ कर प्रतिदिन नियम से सत्य शास्त्रों का अभ्यास करते रहो।

(२२)

आत्मा का सिद्धान्त*

ज्ञान समाधि ही निर्विकल्प समाधि है। ज्ञान द्वारा उसमें स्थित एवं लीन रहना चाहिए, जो पूर्ण प्रत्येक में स्वयं ही स्वयं है। गीता में कृष्ण ने अर्जुन को थोड़ा ही ज्ञान दिया, जिससे उसके सभी शोक नष्ट हो गये। इससे ऊपर अन्य कोई उपाय नहीं है। शोक को नाश करने वाला और शांति देने वाला थोड़ा ज्ञान होने से संसार के समस्त भ्रम नष्ट हो जाते हैं और बुद्धि को तृप्ति मिलती है और सदैव तृप्त रहा जाता है। जैसे अंधकार में प्रकाश आता है तो अंधकार स्वयं ही ओझल हो जाता है। योग वसिष्ठ की स्वामी रामतीर्थ ने बहुत प्रशंसा की है और स्वामी विवेकानन्द ने लिखा हैं कि योग वसिष्ठ को ग्रहण करने से ज्ञान न हो तो मेरा सर काट लें। अतः तुम भी योग वसिष्ठ प्रतिदिन पढ़ते रहो। योग वसिष्ठ अत्यन्त उच्च कोटि की पुस्तक है; जिससे अति सरल प्रकार से ज्ञान प्राप्त होता है तथा गूढ़ तात्पर्य को जाना जा सकता है, पूर्ण तत्त्व को प्राप्त किया जाता है तथा अखण्ड शान्ति मिलती है। उसमें अमूल्य हीरे मोती की भांति वचन भरे हुए हैं। अतः यह पुस्तक योग वसिष्ठ सिंधी में मिले तो ठीक, नहीं तो हिन्दी में गोरखपुर वालों से मंगाकर पढ़ा करो।

हिन्दी भाषा अत्यन्त आवश्यक है। अतः हिन्दी शीघ्र सीख लो। प्रतिदिन थोड़े अभ्यास से शीघ्र सीख जाओगे, यह बहुत सरल है।

* ४ सितम्बर १९६१ को उपलेटा में किया गया प्रवचन।

समस्त कार्य निष्काम करने से हृदय शुद्ध होता है। उसके पश्चात् ज्ञान प्राप्त होता है। भले ही सभी काम व्यवसाय आदि और सेवा करते रहो, किन्तु सपने की तरह समझ कर। मोह ममता रहित समस्त कार्य करते रहने चाहिए। गुरु से, माता पिताजी आदि से सबसे मधुर प्रकार से बोलना चाहिए, साहस से काम लेते रहना चाहिए। आगे आगे बढ़ते रहना तब अवश्य ही लक्ष्य को प्राप्त करोगे। जैसा जिसका निश्चय होगा, उसे वैसा ही फल भी प्राप्त होगा।

जगत असत् और आत्मा सत् है। आत्मा को जानना ही कमाल है। उसको आचरण में लाकर मन को सम्पूर्ण रूप से आत्मा में शान्त करना चाहिए। आत्मा को जानने से शेष कोई वस्तु नहीं रहती, जिसकी इच्छा करें। उसकी सब इच्छाएं वैराग्य, शम, दम आदि जो आरम्भिक साधन हैं, जो वेदांत में स्थिति करने वाले हैं, उनसे भस्म हो जाती हैं, शेष एक सच्चा आनन्द स्वयं ही रहता है, वह सब में उसे देखता है। गुरु के वचनों पर विश्वास रख कर दृढ़ निश्चय करोगे तो तुम्हारी निश्चय ही जय होनी है।

संसार मेला है, स्वप्न है, सपना है, तुम ही एक सत्य हो। जो कुछ हम देख रहे हैं, वह सभी सपने में। जाग्रत आदि तीनों अवस्थाएं स्वप्न के सदृश हैं। वेदान्त की दार्शनिकता सबसे उच्च है, उसका किसी से सम्बन्ध नहीं है। न ऋधियों से, न सिद्धियों, न हठ योग, न राज योग, न मन्त्र योग से न ब्रह्मा बनने से, न विष्णु, न राजा, न रंक होने की इच्छा से। यह सर्वोत्तम सिद्धांत है नित्य आत्मा का।

(२३)

पूर्ण शान्ति का साधन*

शास्त्रों में कई प्रकार के वचन हैं। रोचक, भयानक, यथार्थ। अनेक शास्त्र रचित हैं। उनमें रोचक और भयानक वचनों का त्याग करके शेष यथार्थ वचन, जो आत्मा को ज्ञात करावें, उन्हें ग्रहण करना चाहिये, जो एकत्व वाले हों। न भगवान, न बंदा, एक ही एक। वे शास्त्रों के वचन सभी ईश्वर का ज्ञान देने वाले हैं। परन्तु उनका सार स्वयं पहचान कर प्रतीत किया जाय। वे वचन यथार्थ हैं और न अन्य कुछ। भगवान को समझा जाय, स्वयं अपने को समझा जाय। वह भगवान ब्रह्म परमात्मा, जिसे दूसरा समझ रहे थे, वह स्वयं तुम हो, एक ही एक। तुम्हारे सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है। दूसरा शून्य ही शून्य है।

सन्तोष– सन्तोषी ही सुखी है। भले ही कोई करोड़पति क्यों न हो, किन्तु उसे सन्तोष नहीं है तो शून्य है। सन्तोषी ही सबसे धनवान है, उसे ही शान्ति प्राप्त होती है। नियमित जीवन बनाना चाहिए। भोजन, विश्राम, व्यायाम, भ्रमण, ज्ञान, ध्यान आदि सबका समय निश्चित कर देना चाहिये। इस नियम के अनुसार चलते रहना चाहिये, इससे स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक रहेगा। शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक

* ५ सितम्बर १९६१ को उपलेटा में किया गया प्रवचन।

उन्नति भी होगी और यदि ठीक नियमानुसार न चलोगे तो बीमार हो जाओगे और तुम्हारी यथोचित उन्नति न होगी।

भेष से कुछ न होगा– मूल आत्मा में भीतर का निश्चय चाहिए, बाह्य ढोंग नहीं चलेगा, सच्ची लगन चाहिए, हृदय में, बाह्य भेष से कुछ न बनेगा। दाढ़ी रखना अथवा वस्त्र साधुओं जैसे पहनने से अथवा गेरुए पहनने से अथवा मालाएं पहनने से कुछ नहीं होगा। भले बाहर से कैसी भी स्थिति में हो, किन्तु हार्दिक निश्चय सच्चा और दृढ़ आचरण वाला होना चाहिये, तब बेड़ा पार होगा। आत्म ज्ञान में ही वासनाएं नष्ट होंगी और न योग से, न कर्म से। इनसे तो अधिक वासनाएं बढ़ती जायेंगी। आत्म ज्ञान से पूर्ण शान्ति एवं मोक्ष मिलता है।

नियन्त्रण– मन और इन्द्रियों को काबू में रखने से मोक्ष प्राप्त होता है। मन किसी ओर जाय और इन्द्रियां भोग की इच्छा करें तो मन को रोकना चाहिए और इन्द्रियों को चंचल होने न दिया जाय। पांच विकारों (१) कामना (२) क्रोध (३) मोह (४) अहंकार और (५) लोभ से बचते रहना चाहिये।

आकाश क्या है– आकाश जो ऊपर देख रहे हो, उसका कोई रंग रूप नहीं है। केवल दूर से जितनी अपनी आंखों की दृष्टि जाकर ठहरती है, वहां नीलापन दिखाई देता है। वास्तव में आकाश का कोई रंग रूप नहीं है। आकाश अर्थात् पोला स्थान देने वाला है, जिसे खाली भी कहा जाय। आकाश का भी आकाश मैं हूं, एक ही एक, शान्त स्वरूप, मेरा कोई रंग रूप नहीं है। जैसे आकाश का रंग रूप नहीं

है, वैसे मैं आकाश का रूप हूं। ये सभी मेरी किरणें हैं, जो मुझ आकाश से भिन्न नहीं हैं। सब कुछ में वही व्याप्त है। मैं, ही सब में हूं और तुरिया स्वरूप शान्त, शून्य, जिसका न रंग, न रूप, न जन्म, न मृत्यु, न आना, न जाना। यह शरीर तीनों कालों में जाना ही नहीं। मैं सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म आत्मा एक ही हूं। अखण्ड शान्त आनन्द ही आनन्द हूं। आंखों में वैराग्य, हृदय में ज्ञान, मुख में स्मरण होना चाहिए। लोभ, क्रोध तथा कामनाएं तीनों त्यागने चाहिए।

(२४)

वृत्तियां*

"सो प्रभु दूर नहीं, सो प्रभु तू है।"

जहां जहां मन जाता है, उससे पहले ही वहां उस मन को जानने वाली ज्ञान शक्ति पहुंच जाती है। वह ज्ञान सर्व व्यापक है।

चित्त को अनेक वृत्तियां फैलाती हैं। जितने संसार के शब्द पदार्थ हैं, वे सब चित्त की वृत्तियां हैं। मैं शुद्ध चेतन एक ही अनन्त रूप होकर दीखने में आ रहा हूं। सभी मुझ एक चेतन के कण हैं। यथा सूर्य और उसकी असंख्य किरणें, जैसे जल और उसकी अनेक लहरें। मैं सभी पदार्थों में, शब्द आदि अनेक वृत्तियों में एक ही चेतन स्वरूप परमात्मा हूं। जैसे एक तागे में अनेक मनके, सभी मनकों में एक ही तागा व्यापक, सभी मनकों को सत्ता देने वाला आधार है। वैसे सभी जड़ पदार्थों और अन्तःकरण की वृत्तियों में एक ही चेतन परमात्मा व्यापक है।

आंखें बंद करने से भी चित्त की वृत्तियां भीतर फिर रही हैं। उन उठने वाली वृत्तियों को रोक कर चेतन परमात्मा में लीन करके, बार बार सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा के ध्यान एवं चिन्तन में लीन करके सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई भी वृत्ति उठने न दी जाय। चेतन परमात्मा में स्थित रहना चाहिये। फिर जहां जहां वृत्ति जाय, वहां वहां सदैव स्वयं को ही सब में चेतन-परमात्मा ही परमात्मा देखा जाय। निराकार शब्द चेतन ही जगत है। चित्त का शांत रहना ही ब्रह्म है।

* १० जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

(२५)

स्वर्ग कैसे मिले?*

स्वर्ग की प्राप्ति कैसे होगी? सुनते हो न? स्वर्ग भोगों के भोगने से नहीं मिलेगा। हमें भोग भोगने के लिए मनुष्य योनि नहीं मिली है। किन्तु कुछ करने तथा होने के लिये। यह योनि देवताओं से भी उतम है, क्योंकि इस योनि में हम कर्म कर सकते हैं, किन्तु कौनसा कर्म किया जाय?

भलाई के कार्य करो, मन शुद्ध रखो, ईश्वर भक्ति करो। हर समय पर मन सावधान रखो, बुरे संकल्पों से मुक्ति प्राप्त करो तो यहीं ही स्वर्ग बन जाय। लेकिन जिसे नरक चाहिये, वह बुरे काम करे। कैसे हां न!

सिनेमा— सिनेमा ने तो सत्यानाश कर दिया है। देखो कि इस सिनेमा से कितने घर बरबाद हो गये हैं। कैसे न बुरे चित्र एवं वासनाओं से भरे गाने चित्त को खराब करते हैं! मन खराब तो शरीर खराब। बीमारियां आकर घेरती हैं। पैसे भी दो और बीमारियां भी लो। ऐसी सिनेमा से क्या लाभ? आज कल केवल पैसे कमाने के लिए बुरे से बुरी फिल्म निर्माण करके, लोगों का खाना खराब किया जा रहा है।

* २४ अप्रेल १९६६ को बैरागढ़ में सन्त हृदाराम की कुटिया में किया गया प्रवचन।

एक बार विनोबा को सिनेमा में ले गये। वहां बुरे चित्र दिखाने लगे तो विनोबा दरी बिछा कर सो गये। तुम भी ऐसी फिल्म न देखो। तुम कहोगे कि स्वामी जी, आप तो सिनेमा के विरुद्ध बोलते हो। अरे बाबा, मैं तो सिनेमा के विरुद्ध नहीं बोलता, परन्तु तुम खेल वालों को कहो कि यदि तुम अच्छे अच्छे खेल मंगवाओगे तो हम खेल देखेंगे, नहीं तो सिनेमा घर का द्वार भी न देखेंगे।

आजकल के चित्रों ने तो युवकों का ब्रह्मचर्य ही नष्ट कर दिया है। ऐसे भी कुछ खेल होते रहते हैं, जो हमें हर प्रकार की हानि पहुंचाते हैं।

पाखण्ड – देख नहीं रहे हो कि आजकल पाखण्ड कितना न बढ़ रहा है। कहते हैं कि आओ तो तुम्हें भगवान दिखावें। अरे, भगवान दिखाने वाले द्वार द्वार पर धक्के खाने जाते हैं क्या? प्रत्येक के पीछे पड़ रहे हैं कि आओ तो तुम्हें भगवान दिखावें। पिता भी कहें एवं खाना भी खिलावें। तुम समझो तो यदि वे ऐसे होते तो फिर प्रत्येक के पीछे धक्के क्यों खा रहे हैं? ये सभी वेतन पर खड़ी स्त्रियां एवं पुरुष हैं, जो अपनी लालच में आकर, दूसरों को पाप कर्मों की ओर घसीट कर ले जा रहे हैं। कहते हैं कि "हमारे भगवान के देखने के पश्चात् जैसे चाहो, वैसे करो, कोई भी पाप नहीं लगेगा। अरे बाबा, ऐसे भी कहीं हुआ है कि पाप कर्म से पाप न लगे? देखो न, जिस भी महात्मा अथवा और किसी ने बुरा काम किया है तो उसे बुरा फल अवश्य मिला है। बकरा कितना भी बलवान क्यों न हो, किन्तु स्वच्छन्द घूमेगा तो क्या होगा? अवश्य ही उसे गीदड़ एवं भेड़िये खा जाएंगे। फिर ऐसी मुक्ति और भगवान देखने अथवा बनने से क्या लाभ?

भगवान कोई खिलौना है क्या, जो दिखाते हैं? किसी बालक से पूछो कि बुरे कर्मों का क्या फल मिलेगा तो कहेगा कि बुरा। और अच्छे कर्मों का कैसा फल मिलेगा तो कहेगा कि अच्छा। यदि बालक भी समझता है कि अच्छा काम किया जायेगा तो अच्छा होगा, तुम बड़े तो अच्छी तरह समझ सकते हो कि ये भगवान दिखाने वाले इतने कुकर्म करते हुए शान्ति किस प्रकार प्राप्त कर सकेंगे? ऐसे बुरों के संग से बचो। भगवान देखने वाले तो 'पहुंचे' हुए होते हैं। कहना होगा कि जिन निरंकारियों ने भगवान देखा है, वे सभी पहुंचे हुए हो गये हैं क्या?

अरे बाबा, साईं कंवरराम पहुंचा हुआ था न? फिर किसी भी निरंकारी में साईं कंवरराम जैसे लक्षण (गुण) हैं? फिर उन्होंने भगवान देखा है, अथवा देखकर घर को आ जाते हैं, फिर कहें कि भगवान देखा है। अरे साईं कंवरराम जैसे किसी में गुण हों तो लीलाशाह उनका दास बने। ऐसे सन्तों को मेरा बार बार नमस्कार है। उनके पास तो केवल बकवास है, दूसरी कोई लगन नहीं है।

आचार है नहीं, फिर चले हैं भगवान दिखाने। अगर ऐसे होते तो सब ओर से निन्दा होने की आवाजें क्यों आतीं?

भाई, भगवान को पाने वाले तो शान्त चित्त होते हैं। बताओ कि कौनसा निरंकारी है, जो शान्त चित्त है? बहुत बोलने वाले और कामिनी, कंचन के लिए तो बहुत ही स्वयं को मार कर हत्या कर रहे हैं।

गीता – गीता जगत् में प्रसिद्ध पुस्तक है। यह ५०० बोलियों में तो छप चुकी है। इसकी तुलना अन्य कोई पुस्तक नहीं कर सकती है। गीता बताती है कि शरीर पाकर ऐसे

पद को प्राप्त किया जा सकता है, जो कदापि मौत जन्म के चक्र में नहीं पड़ सकता। गीता कहती है कि "भोग न भोगें सदाचारी एवं सतो गुणी बनिये।"

इस बीच एक ने कहा कि "स्वामी जी, आप तो हैं सन्त किन्तु हम गृहस्थी क्यों न भोग भोगें?"

उत्तर दिया कि "बाबा, निःसंदेह भोगें, परन्तु ईश्वर आज्ञा के विरुद्ध थोड़ा भी सुख भोगेंगे तो पहाड़ जितना दुःख सहन करेंगे। जो नर नारी अपने ऊपर संयम न रखेगा वह अवश्य दुःख भोगेगा।"

खाओ, पीओ और जीवित रहो– यह तो आज कल के जवानों का नारा हो गया है। ऐ जवानो! तुम क्या खा पी सकते हो? तुम से अधिक तो पशु खा पी सकते हैं। है कोई जवान, जो दो सेर अन को एक ही समय खा सके? कोई भी न खा सकेगा, किन्तु जो खाएगा, उसे सब कहेंगे पेटू है। उसकी निन्दा हो जाएगी। अरे, ऐसे खाना खाने से क्या लाभ? जो निन्दा का टोकरा सिर पर उठाए? फिर कहते हैं कि खाओ, पीओ और जीवित रहो। मनुष्य योनि में क्या खा सकते हो? कभी हाथी की योनि मिलेगी, तो फिर दो सेर क्या, परन्तु दो मन खाया जाय तो कोई पेटू नहीं कहेगा परन्तु मनुष्य योनि में तो कुछ कर लें, जो प्रशंसा का मुकट पहिनकर, मुस्कराते हुए, चलकर प्रियतम से मिलें।

(२६)

जीवन-मुक्ति *

एक विद्यार्थी मेरे पास आया। कहा कि स्वामीजी, 'आप कह रहे थे कि भगवान हमसे जुदा नहीं है। जब हम से जुदा नहीं है तो फिर मांगें किससे?" मैंने कहा, तुमने अच्छा प्रश्न किया है। मुझे प्रसन्नता हुई कि एक छात्र ने यह प्रश्न किया था। इस समय हमारे देश में रजोगुण बढ़ गया है, हमारे देश की दुर्गति हो रही है, विद्यार्थी तथा अन्य लोग गलत मार्ग पर जा रहे हैं, सम्बन्धी एवं अध्यापक भी धर्म से विमुख हैं। उस समय विद्यार्थियों में ऐसा प्रश्न उत्पन्न हो वह अच्छी बात है। मैंने उसे कहा कि यह बात तुम समझो और तुम्हारे मस्तिष्क में बैठे, इसके लिए आवश्यक है कि सत्संग करो, अच्छे कार्य करो और कर्त्तव्य पालन करो। हम क्या हैं, वह समझें। हम यह स्थूल और सूक्ष्म शरीर नहीं हैं। अगर स्वयं को भगवान का अंश समझते हैं, तब जीवन मुक्ति मांगते हो।

जीवन-मुक्ति क्या है? सदैव आनन्द में रहना। हमें यही याचना करनी चाहिये। बिड़ला अथवा टाटा जैसे धनवान सेठ के पास जायं और वह कहें कि मांग जो तुम्हें चाहिये, तो क्या उससे मुठ्ठी भर अन्न ही मांगना चाहिए? यह तो तुच्छ याचना है। हमारे सेठों के सेठ भगवान हैं। क्या उनसे संसार के नाशवन्त पदार्थों की मांग करें? हमें

* ४ मार्च १९६६ को अजमेर में किया गया प्रवचन।

मांगना चाहिये तो जीवन-मुक्ति। अन्य किसी वस्तु की याचना क्यों करें? अपना-अपना कर्त्तव्य पालन करके, स्वयं को पहचान कर जीवन मुक्त बनें।

यह साधारण बात नहीं है। हममें जीवन मुक्ति की प्राप्ति के लिए गुण होने चाहिये। राजा वह, जिसके पास प्रजा हो, कोष हो, सेना एवं कोष के अतिरिक्त शाह होना असंभव है। हम में भी विवेक 'वैराग्य' षट् सम्मति आदि गुण नहीं हैं तो जीवन मुक्त कैसे बनेंगे?

गीता की महिमा – वेद संसार में पुरातन से पुरातन ग्रन्थ हैं। वेद अखण्ड असीम ज्ञान का भण्डार है, उसका ज्ञानकाण्ड है वेदान्त। गीता में ज्ञान का भण्डार है। वेदव्यास गंभीर, गुणवान ज्ञानी थे, उन्होंने ही उसकी रचना की। उस से अधिक कौन ज्ञानी हो सकता है? उस गीता पर सहस्रों टीकाएं हो चुकी हैं। उस पर लोकमान्य तिलक महाराज ने भी एक गीता रहस्य नामक टीका लिखी है। ज्ञानेश्वरी गीता भी अतुलनीय है। गीता पर श्री स्वामी रामतीर्थ महाराज जी के प्रसिद्ध ग्रन्थ लेखक शिष्य नारायण स्वामी ने भी सुन्दर टीका लिखी है।

उनकी भूमिका के आधार पर मैंने "उन्नति के लिए दुख की आवश्यकता" लिखी है। अभी भी गीता पर टीकाएं लिख रहे हैं। पता नहीं कि अभी भी उस पर कितनी टीकएं लिखी जायेंगी।

हमारे देश के प्रसिद्ध कवि ठाकुर को अमरीका में एक पुस्तकालय में घुमाने के लिए ले गये। वहां उन्होंने कहा कि मुझे वह पुस्तक दिखाइये, जो सर्वोत्तम हो। उन्होंने एक पुस्तक निकाली, जो कई रूमालों में लपेटी हुई थी। वह थी "श्रीमद् भगवत् गीता।" ठाकुर को बहुत प्रसन्नता हुई।

जिस ग्रन्थ का संसार में सम्मान है, उसकी ओर हम थोड़ा भी ध्यान नहीं देते। वह ग्रन्थ भगवान के मुख की वाणी है, भारत का अमूल्य रत्न है। उसका तुम्हें जो सम्मान करना चाहिये, वह नहीं करते हो।

लोगों को कहा जाता है कि गीता पढ़ो तो कहते हैं कि हमें भिखारी होना है क्या, जो गीता पढ़ें? क्या अर्जुन भिखारी बनना चाहते थे, जो उसे गीता का ज्ञान बताया गया। क्या श्री कृष्ण भगवान ने उसे भिखारी बनाने के लिए गीता का ज्ञान दिया था? वह तो शेर बनाने के लिए है, वह तो जीवन मुक्त बनाने वाली है।

ईसाई देखो तो बाईबल का कितना सम्मान करते हैं, और उसके प्रचार के लिए कितना धन व्यय करते हैं? उनके बालक भी बाईबल पढ़ते हैं। वही दशा मुसलमानों की है, कुरान उन्हें अवश्य ही पढ़ाया जाता है। परन्तु हम हिन्दू अपने अमूल्य रत्न गीता का आदर नहीं करते। गीता स्वयं पढ़ो और बच्चों को पढ़ाओ। उसका प्रचार करना अपना धर्म समझो।

गीता के पंद्रहवें अध्याय के पांचवें श्लोक में आया है कि मान एवं मोह रहित, आसक्ति रूप दोष से मुक्त, सदैव आत्म रूप में स्थित, कामना से दूर, सुख दुःख आदि विरोधी जोड़ों से मुक्त ज्ञानी कहलाते हैं। जीवन-मुक्ति प्राप्त करने का यह साधन है। ऐसे स्वभाव धारण किये तो अधिक क्या चाहिये?

विवेक वैराग्य से रहें – ज्ञानेश्वरी गीता पढ़ो। बैराग्य का सच्चा अर्थ समझो। तुम कहोगे कि "बाबा, पंडताई की बातें न कीजिए।" मैं तो सरल बातें बता रहा हूं। संसार में हम विवेक वैराग्य से रहें। संसार के सब पदार्थ नित्य

एवं सुखदायक नहीं हैं, उनके विषय सुख क्षण भंगुर हैं। संसार में रहो, परन्तु सब कुछ विचार से ग्रहण करो और भोगो। दुनिया की कोई भी वस्तु सुन्दर नहीं है, न आनन्द-दायक है और न सत् है। शरीर को ही जांच कर देखो। बचपन, जवानी, वृद्धावस्था, इस प्रकार अवस्थाएं बदल रही हैं। अन्त में मौत आ जाती है। क्या शरीर सुन्दर है? नेत्रों और नाक से क्या निकलता है? शरीर की खाल उतार कर देखो। रक्त और पीप, हड्डियों और मांस का पुतला है, भीतर मलमूत्र से भरा पड़ा है। हम जो खाते हैं, वह भीतर जाकर गंदा होता है और अन्त में मलमूत्र के रूप में बाहर निकलता है। जिस शरीर को सुन्दर समझते हो, वह वृद्धा-वस्था एवं बीमारी अवस्था में देखो। चेचक अथवा अन्य कोई रोग हो तो तत्पश्चात् सुन्दर व्यक्ति को देखो। अविचार के कारण ही हम उसे सुन्दर समझते हैं।

क्या शरीर आनन्द रूप है? माता के गर्भ का दुख, जन्म का दुख, बचपन, बीमारियों का दुख विचार करके देखो। दुख ही दुख है। शरीर सत् भी नहीं है, शरीर तो नाशवान वस्तु है। काल कन्धों पर खड़ा है।

सुख के लिए सत्संग – सुख चाहते हो, जीवन मुक्ति चाहते हो तो सत्संग करो। कहते हो कि जब बड़े होंगे, तब सत्संग करेंगे। वृद्ध बनोगे तो तुम्हारी कैसी दशा होगी? तुम्हारे अंग निर्बल हो जायेंगे, शरीर कांपता रहेगा। बैठने और चलने की शक्ति तुम में नहीं रहेगी। दांत गिर जाएंगे और खांसी आकर पकड़ेगी। किसी सन्त से पूछा गया कि दुखों का स्थान बताइये। उत्तर दिया कि बुढ़ापा। बताओ कि बुढ़ापे में सत्संग क्या करोगे? तुम में सत्संग की बातें समझने की शक्ति कहां रहेगी, पर्याप्त बुद्धि भी नहीं रहेगी।

ज्ञान तो बचपन से मिलना चाहिये। माता मदालसा अपने बालकों को छोटी आयु में ही वह लोरी देती थी, जिससे वे राजा होने की परवाह न करके त्यागी हो जाते थे। वह कहती थी कि जो मेरी कोख से जन्म ले, वह फिर जन्म मृत्यु के चक्र में न आवे। हमें मनुष्य जन्म मिला है, इसके लिए कि चोरासी के चक्र से मुक्त हों। इसलिए प्रयत्न करें।

सुख कहां – दो मित्र ४-५ वर्ष के पश्चात् आपस में मिले। एक दूसरे से समाचार लेने लगे। एक कहने लगा कि मुझे बढ़िया घर था, दस बीघे भूमि थी, १०-१२ बैल थे, पांच बच्चे हुए। वे सभी नाश हो गये, स्त्री व बच्चे सभी मर गये। भूमि, बैल भी समाप्त हो गए, शेष ये वस्त्र रह गए हैं।

यह सुन कर उसका मित्र हंसने लगा। इस पर उसके मित्र को क्रोध आया। कहा कि अच्छे मित्र बने हो! मेरी इस अवस्था पर तुझे शोक तो नहीं होता, अपितु ठहाके मार रहे हो! तुझे तो मेरी दशा पर दुखी होना चाहिए था।

मित्र ने कहा- हां लेकिन मेरी बात भी तो सुनो। ६५ बीघे भूमि थी और लगभग तीस मकान। मैंने विवाह किया तो इक्कीस बच्चे हुए। लग भग साठ बैल और गौएं थीं। सिन्ध नेशनल बैंक में पांच हजार नकदी थी। वे सब नष्ट हो गए। मैंने उन्हें स्मरण किया तो उनकी तुलना में तुम्हारा दुख कुछ नहीं था, अतः मैं हंसने लगा।

विचार करके देखोगे तो शरीर और पदार्थ में कोई सुख नहीं है। शरीर दुखालय है।

एक सेठ सन्तों को भोजन कराता था। एक सन्त का उसे पता लगा तो उसे अपने पास ले आया, उसे अपने पास

ठहराया। वह विचार करने लगा कि सन्त कहते हैं कि दुनिया में दुख है, किन्तु यहां तो सेठ के पास सोने चांदी के बर्तन हैं और सुख के सभी साधन हैं। तब उसने भोजन करने के पश्चात् सेठ से पूछा– "सेठजी" तुम्हें कोई दुख तो नहीं है? सेठ की आंखों से आंसू बहने लगे। सन्त की सान्त्वना देने पर उत्तर दिया कि यह सच है कि धन दौलत तो बहुत है, किन्तु मुझे कोई सन्तान नहीं है, अतः दुखी हूं।

दूसरों के दुख देखोगे तो अपने भूल जाओगे। तुम्हें सुन्दर हाथ पैर, नेत्र आदि अवश्य मिले हैं परन्तु किन्हीं को हाथ नहीं हैं, किन्हीं को आंखें नहीं हैं, कुछ को पैर नहीं हैं। गीता के द्वितीय अध्याय के चौदहवें श्लोक में आया है कि सरदी गर्मी, सुख दुख तथा विषयों की प्राप्ति सभी क्षणभंगुर हैं, नाशवान हैं।

शरीर किसके लिए ?– जिसको शरीर मिला है, उसे कोई न कोई दुख है, परन्तु मनुष्य शरीर किसके लिये मिला है, उस बात को समझो। यह बात बिलकुल आवश्यक है। मनुष्य योनि गई तो पता नहीं है कि फिर कौन सी योनि तुम्हें मिलेगी। अतः सन्त कहते हैं कि जीवन मुक्ति के लिए यत्न करो। तुम्हें भोगों से सुख नहीं मिलेगा। बुरे संग से दूर रहो, बुरे कर्म मत करो। शुद्ध विचार रखो। भगवान का भजन करो। स्मरण करो। चिन्तन करो। ध्यान करो। आत्मज्ञान प्राप्त करो तो मोक्ष को पाओगे।

जो दीखता है, वह अस्ति, भाति, प्रिय नाम एवं रूप वाला है। नाम व रूप तो सर्वदा बदलते रहते हैं। दुनिया के सब पदार्थ नाशवान हैं, कोई भी वस्तु सत् नहीं है। वृहदारण्यक उपनिषद् में यह अच्छी प्रकार समझाया गया है।

सत्य क्या है– सत्य तो उसे कहते हैं, जो तीनों कालों भूत, वर्तमान और भविष्यत् में स्थित हो। जो पहले था, अभी है तथा बाद में भी हो। किसका भी शरीर पहले नहीं था, अभी है और बाद में नहीं रहेगा। प्रत्येक वस्तु रूप बदल रही है। यह शरीर जन्म लेने से पूर्व नहीं था, जन्म लेने के पश्चात् बचपन, जवानी, बुढ़ापा और तत्पश्चात् मृत्यु आती है। तब वह सत्य कैसे हुआ? अविवेक के कारण ही हम इस शरीर को सत्य समझते हैं। जब हमें सत्य बुद्धि प्राप्त होगी, जब हमारी बुद्धि शुद्ध होगी, तब हम उसे सत् और प्रिय नहीं समझेंगे।

राग तथा द्वेष का त्याग – राग और द्वेष का त्याग करो, वैराग्य धारण करो। वैराग्य धारण करने का अर्थ फकीरी लेना नहीं है किन्तु राग अर्थात् असत् वस्तुओं में से प्रेम या ममता का त्याग करना है। आसक्ति छोड़ो। भगवान का नाम अन्धे के लिए लाठी के समान है। भगवान का आधार लो। मनुष्य जन्म का आदर करो। तुम इसी जन्म में ही जीवन मुक्त हो सकते हो। भगवान से जीवन मुक्ति मांगो, अन्य कुछ भी नहीं मांगो।

तुकाराम दक्षिण भारत में महान भक्त हो गए हैं। उनके भजन प्रसिद्ध हैं। वे भी अपने भजन में कहते हैं कि भगवान से सुबुद्धि मांगो, अन्य कुछ भी नहीं मांगो।

ये बातें जो मैं तुम्हें सुना रहा हूं, वह इसके लिए कि जीवन मुक्ति प्राप्त करने में सहायक हैं। जो बातें इस मार्ग में बाधा हैं, वे त्याग दो। बुरा संग, बुरे विचार, बुरा व्यवहार त्याग दो। होली आई है। होली पर तामसी भोजन करना पाप है। होली पर जो कुछ करते हो, वह उचित नहीं है। शराब मांस का उपयोग नहीं करना चाहिये।

मनुष्य जन्म को सफल बनाने के लिए सत्संग करो। "सत्संग करिये भाई, जान अजान परसो लोहा कंचन हो जाई।" अर्थात् लोहा जानते हुए अथवा न जानते हुए भी पारस से लगेगा तो सोना हो जायेगा। इस प्रकार सत्संग है। चन्दन के पेड़ के निकट जो अन्य पेड़ होते हैं, वे भी चन्दन की सुगंध खींचकर चन्दन जैसे सुगंधित हो जाते हैं।

"राम मिलन के कारने, तू क्यों होय उदास।"

"दादू संगति साध की, राम उन्हीं के पास।"

वेद वाणी तथा सन्त वाणी हमारा उद्धार करने वाली है।

भगवान से जीवन मुक्ति मांगो। जीवन मुक्त हुए तो विदेह मुक्ति स्वयमेव मिलनी है। तुम्हें जीवन मुक्ति मिले तो सभी कार्य पूर्ण हुए। भगत कंवरराम कहते थे "है भी राम फिर भी कहो राम।"



(२७)

विद्यार्थियों का कर्त्तव्य*

जैसे बैठे हो, वैसे अच्छे लग रहे हो। काश, गुणों में भी सुधरते रहो। बड़े कहते हैं कि बच्चे सुधरे तो जग सुधरा। बालकों को सुधारने वाला कौन है? माता, पिता व शिक्षक। स्कूल दरबार के समान है। विद्यार्थी स्कूल में आवे तो उसे चाहिये कि शिक्षक के आगे सर झुकाए। एक गृहस्थी स्कूल के पास से गुजरा तो उसने अपना सर उसके सामने झुकाया। पूछताछ करने पर विदित हुआ कि वह वहां से जाते हुए सदैव सर झुकाता है। तब मैंने सोचा कि बराबर स्कूलों से पढ़कर तत्पश्चात् ही मनुष्य योग्य गृहस्थी होते हैं।

कई बच्चे किताबें लापरवाही से रखते हैं, जिन पुस्तकों से विद्या प्राप्त करते हैं। तुम पुस्तकों पर पोश चढ़ाकर बाद में ही पढ़ा करो। विद्या की बड़ी महिमा है। विद्या के पढ़ने से जीव का भाग्य खुलता है। अंधा, लूला, लंगड़ा, काना भी विद्वान होने से मान पाता है।

विद्यार्थियों को चाहिये कि दृढ़ संकल्प करें कि मैं उत्तीर्ण होऊंगा। विद्यार्थियों को सुस्ती नहीं करनी चाहिये। परिश्रम करेगा तो अवश्य उत्तीर्ण होगा।

* ९ मार्च १९६६ को अजमेर के आदर्श विद्यालय में किया गया प्रवचन।

तुम प्रार्थना अवश्य किया करो। प्रार्थना से मनुष्य उन्नति करता है, महात्मा गांधी भी प्रतिदिन प्रार्थना करता था। वे इतने महान थे, जो उनमें २३ अवतार समाये हुए थे। उन्हें कभी भुला न सकेंगे। महात्मा गांधी कहते थे कि स्कूलों में धार्मिक शिक्षा देनी चाहिये। महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा में बताया कि उनके माता पिता उसे उपदेशों पर ले जाते थे। अतः वह रामायण भक्त हो गया। अध्यापक तो बच्चों को समझावें किन्तु माता पिता को भी चाहिये कि बच्चों को शिक्षा दें। पहिले माताएं बच्चों को कहानियां सुनाती थीं।

हम भले कहें कि भगवान नहीं है, परन्तु जिन्होंने उसमें विश्वास रखा है, वे कैसे कहेंगे कि भगवान नहीं है? महात्मा गांधी से किसी ने पूछा कि भगवान है। उन्होंने कहा कि हां है।

स्वामी विवेकानन्द ने श्री रामकृष्ण परमहंस से पूछा- "भगवान है?" उन्होंने उत्तर दिया- "हां, मैंने वह देखा है।" एक व्यक्ति ने कहा - "मैं भगवान को कैसे मानूं? दूसरों को जूतियां दी हैं, किन्तु मुझे जूती भी न दी है।" आगे चला तो वह व्यक्ति देखा, जिसे पैर भी नहीं थे। तब उसने चिल्ला कर कहा- "भगवान! मुझे जूती नहीं चाहिये। मैं ऐसे ही अच्छा हूं। मैं आभारी हूं कि भगवान! तुमने मुझे पैर तो दिये हैं।"

स्वास्थ्य के लिये, प्रसन्नता के लिये सीटी बजाया करो। डॉ. हरनामदास जैसा व्यक्ति भी ऐसा करते थे। सत्य है कि खुशी जैसी खुराक नहीं, चिन्ता जैसी बीमारी नहीं। भगवान को सदैव याद करो। समय न मिलने का बहाना

नहीं करना चाहिये। समय तो मिल सकता है। केवल सुस्ती त्यागो। मनुष्य शरीर बड़े भागों से मिला है। नाम स्मरण करके, मुक्ति प्राप्त करो। कुंभकरण की तरह नींद नहीं करो। उठो, जागो और प्रभु को प्राप्त करो।

भारत शब्द का अर्थ क्या है? भा का अर्थ है प्रकाश, और रत का अर्थ है प्रीति। ज्ञान में जिसकी प्रीति है, वह भारत है। इस भारत में ऐसी भी देवियां हैं, जो अपने पुरुष के अतिरिक्त, अन्य सभी को पुरुष की दृष्टि से नहीं देखतीं।

माता पिता का प्रतिदिन चरण स्पर्श करो। ऐसा करने से आयु बढ़ती है। संबन्धियों को बच्चों को चरण स्पर्श करते समय तीन मुट्ठियां (मुटिका) लगानी चाहिये। पहली मुट्ठी का अर्थ है कि तुझे अच्छी बुद्धि प्राप्त हो। दूसरी मुट्ठी का अर्थ है कि तू बड़ी आयु वाला हो। तीसरी मुट्ठी का अर्थ है कि दुनिया की सेवा कर।

मनुष्य वह है, जिसमें मानवता है। मनुष्य वह समझो, जिस में इन्सानियत है। उत्तम मानव वह है, जिसने अपने मन को वश में किया है और विचार शुद्ध किये हैं।



(२८)

माताओं को परामर्श*

माताओ ! आप देवियां हैं। घर की रानियां है। घर को बनाना, घर की गाड़ी ठीक प्रकार से चलाना आपका कर्त्तव्य है। इसके साथ चाहिये कि बुरे कर्मों से बचो, अच्छे कर्म करो। तुम कहोगी कि अच्छे कर्म करने से क्या होगा? अच्छे कर्म करने से संकल्प अच्छे होंगे। यह मार्ग है सचखंड की ओर चलने का। सिनेमाएं बिलकुल नहीं देखा करो। सिनेमा देखने से विचार, संकल्प खराब होते हैं। भगवान को याद करो। भगवान को प्रार्थना करो कि "सबका भला करो।"

तुम समझती हो कि हम सुन्दर हैं। किसमें? जिस शरीर को सुन्दर समझती हो, मरने के पश्चात् वह शरीर सुन्दर क्यों नहीं लगता? फिर उसको घर में क्यों रहने नहीं देते? क्यों उसे ले जाकर जलाते हैं? जिस शरीर को सुन्दर समझती हो, उसकी चमड़ी उतारकर देखो कि भीतर क्या है? भीतर रक्त, रोग, गंद मैल है। फिर वह शरीर सुन्दर कैसे हुआ? उस शरीर में सौन्दर्य नहीं है। सौन्दर्य होता है अच्छे कर्म करने से। अच्छे कर्म करो। सत्संग करो तो तुम्हारे विचार अच्छे होंगे।

* ३ सितम्बर १९६२ को सायं मथुरा में श्री केवलराम भाटिया के घर में स्त्रियों की सभा में किया गया प्रवचन।

दुःखों से न डरो। सुख-दुःख, हानि लाभ, संसार में मिले हुए हैं। दुःखों से भागकर छूटा नहीं जा सकता। सुख के लिए दुःखों की आवश्यकता है। जब तक शरीर है, तब तक दुःख आते जाते रहेंगे। उनकी चिन्ता न करो।

घरों को यदि सुखधाम बनाना चाहती हो तो सासों को चाहिये कि वे बहुओं को पुत्रियों के समान समझें और उनसे बेटियों की नाईं प्रेम पूर्ण व्यवहार करें। बहुओं को भी चाहिये कि सासों को माताओं के सदृश समझें और उनसे सम्मान एवं प्यार रखें और उनकी सेवा करें। इस प्रकार घर की गाड़ी अच्छी चलेगी और घरों में सुख एवं शान्ति रहेगी।

फिर भी तुम्हें कहूंगा कि प्रातः उठने और रात को सोने के समय भगवान को अवश्य प्रार्थना करती रहो कि "हे प्रभु ! हमें अच्छी बुद्धि दो और सबका भला करो।" इसमें तुम्हारा भला है।



(२१)

अध्यास अथवा भ्रान्ति*

भ्रान्ति के कारण ही हम स्वयं को दुःखी कर रहे हैं। यदि भ्रान्ति भाव निकल जाय तो फिर तो आनन्द विदित होगा।

अविद्या भुलाए, विधो जीउ भ्रम में,
पाणु पंहिजो पाण में, वेठो विञाए,
अण हूंदे दरियाअ में गोता नितु खाए,
मुंहुं मढ़ीअ पाए, 'सामी' द्रिसे कीनकी।

सिन्धी के प्रसिद्ध कवि सामी साहब कहते हैं कि- "अविद्या ने भुलाकर जीव को भ्रम में डाल दिया है। स्वयं को अपने में गंवा बैठा है। नदी है ही नहीं, उसमें गोते खा रहा है। सामी कहते हैं कि भीतर में झांक कर देखता नहीं।"

राज महल में राजा का पांच वर्षों का पुत्र नींद में सोया पड़ा था। एक भील अवसर पाकर बालक को चुरा कर ले गया। उसके आभूषण उतार कर, उस राजकुमार को अपने बच्चों के साथ जाकर रखा। भील के बच्चे और राजकुमार मिलकर भील के पास पलते रहते थे और मिल जुल कर खेल खेलते रहते थे।

* १५ तथा १६ दिसम्बर १९६५ पर श्री कृष्ण गऊशाला आगरे में किया गया प्रवचन।

राजकुमार बड़ा होता गया। जब युवावस्था में आया, तो भी वह भीलों की तरह काम काज करता रहा अर्थात् हिंसा, पाप, चोरियां और जीवों का घात करता है।

एक दिन घूमते शिकार करते हुए घने जंगल में जा पहुंचा। वहां उसे प्यास ने बहुत सताया। जल की खोज में इधर उधर जांच की तो उसे एक महात्मा की कुटिया दीखने में आई। उस कुटिया में जाकर महात्मा को प्रणाम करके विनती करके कहने लगा- "महाराज! मुझे प्यास सता रही है। कृपा करके पानी पिलाइये।"

महात्मा ने उसे पहचान लिया। उन्होंने राजकुमार को राजमहल में अच्छी तरह देखा था। राजा दर्शन के लिए महात्मा को बुलाता था। महात्मा ने उस लड़के को बिठाया और कहा कि तुझे पानी पिलाता हूं। महात्मा ने उससे पूछा कि "तुम कौन हो?" लड़के ने उत्तर दिया- "मैं भील हूं।" महात्मा यह सुनकर आश्चर्य में पड़ गया। उसे कहा कि तुम राजकुमार हो, मैं तुझे अच्छी प्रकार जानता हूं। तू भीलों के संग में आकर अयोग्य काम करके अपने को भील समझ बैठा है। तुम अपने को पहचानो, अपने वास्तविक स्वरूप को याद करो। जब तुम राजकुमार वाले स्वरूप को जानोगे, तब तुम इस भील के जीवन को छोड़-कर, राजमहल में जाकर राज सिंहासन प्राप्त करके राजा होकर राज्य चलाओगे और आनन्द पाओगे।"

राजकुमार को महात्मा के वचन सुनने के पश्चात् बचपन का स्मरण आया और उसे, बिलकुल निश्चय हो गया कि मैं भील नहीं हूं। मैं निःसंदेह राजकुमार हूं।

तत्पश्चात् शीघ्र ही स्नान करके निर्मल हुआ। महात्मा ने तत्काल राजा को सन्देश भेजा। राजकुमार के लिए

राजकीय वस्त्र और आभूषण आये, जो राजकुमार ने पहने। वस्त्र एवं आभूषण पहिन कर राजकुमार राजा के लोगों के साथ राजमहल में गया और जाकर राजा से मिला। फिर तो राजमहल में रहकर राज्य भोग प्राप्त करके, बड़े आनन्द को पाया।

इस दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि इस जीव रूप राजकुमार को देह अध्यास अर्थात् भ्रान्ति के कारण काम क्रोध आदि अपने वश में करके, संसार रूप घने बन में लेजाकर उसके दैवी सम्पदा गुण रूप आभूषण उतारकर, अपने जैसा कर देते हैं।

यही जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूल कर, अपने को भील मानकर, अनेक प्रकार के कुकर्म कर रहा है और वह अज्ञान के कारण समझ रहा है कि मैं ही कर्त्ता भोक्ता हूं। मैं पुण्यात्मा और पापी हूं। मैं सुखी और दुःखी हूं।

इसी प्रकार जीव अपने को कर्त्ता, भोक्ता और सुखी दुःखी मानकर संसार रूप जंगल में भटक रहा है। जब यह जीव किसी पुण्य के प्रताप से किसी आत्मवेता गुरु की शरण में जाता है, तब उसे सत्गुरु ज्ञान उपदेश देता है कि तू देह नहीं है। तू अज्ञानी नहीं है। तू जाति वरण वाला नहीं है, तू कर्त्ता और भोक्ता, पाप और पुण्य के सम्बन्ध वाला नहीं है। तू शुद्ध सत् चित्त आनन्द चिदघन स्व स्वरूप को भूल कर इस अवस्था में हुआ है। तू स्व स्वरूप याद कर और अपने को पहचान, तब तू सुख प्राप्त करेगा। सत्गुरु के उपदेश से वह जीवभाव भूलकर, साक्षी, अभिन्न, एक रूप ब्रह्म की अद्वैत निष्ठा प्राप्त करके, सुख सागर ब्रह्म में लीन होता है।

गलती तब दूर होती है, जब दुरुस्ती की जाती है।

गलती जब दबाई जाती है, तब फोड़ की भांति फटती है, नहीं तो भयानक रूप धारण करती है। कोई भी भूल थोड़ी करके न समझो। अपनी थोड़ी भूल भी पहाड़ जितनी करके समझो। गणित में देखो कि विद्यार्थी केवल थोड़ी भूल करता है तो हिसाब गलत होता है और वह थोड़े अंकों से अनुत्तीर्ण हो जाता है।

गफलत से तुच्छ केले का छिलका कोई रास्ते में फेंकता हैं और किसी मनुष्य का उसके ऊपर लांघते पैर फिसल जाता है तो उसे कितनी न चोट आ जाती है? बालकों के जीवन में साधारण से साधारण बातों पर भी ध्यान देना चाहिये, नहीं तो बड़ा होने पर उनका चरित्र बिगड़ जाता है? तृण की चोरी, दह लाख की चोरी। पहले बालक किसी का पेन अथवा किताब चोरी करता है। यदि रिश्तेदारों ने उस पर ध्यान न दिया और डांटा नही तो बड़े होने पर वह डाकू बन जाएगा। आरम्भ में यदि झूठ बोलने की आदत पड़ी तो कोई भी विश्वास नहीं करेगा और जीवन बुरा बन जाएगा। यदि थोड़ा घाव होने का खयाल न रखा गया तो फुंसी हो जाएगी और यदि फुंसी को छोड़ दिया जायेगा तो नासूर (न छूटने वाला घाव) हो जायेगा।

इसलिए बचपन से ही कदम पर दृढ़ रहना चाहिये, देखा जाय कि मुझसे कोई भूल हो गई है तो उसे सुधारना चाहिये, नहीं तो बड़े होने पर पछताना पड़ता है।

हमारा भला तब होगा, जब स्वयं में विश्वास और श्रद्धा रखकर दूसरे की शरण लेंगे। बालक भी माता-पिता की शरण में कैसे न पलता रहता है। माता पिता उसकी हर समय कैसे न संभाल कर रहे हैं। उन्हें बच्चे का सब प्रकार से खयाल रहता हैं। बालक जब बड़ा होकर स्कूल में जाने

योग्य होता है तो शिक्षक की शरण लेता है। तब शिक्षक शरण आये को पढ़ाकर, परीक्षा दिलवाकर, बुद्धिमान बनाकर उच्च कोटि पर पहुंचाता है।

शरण लेना अथवा आत्म समर्पण तीन प्रकार के होते हैं:

१. अपराधी अथवा बीमार– अपराधी वकील की शरण लेता है। वकील उसे आशवासन देता है कि मैं तुझ मुकदमे में बचाऊंगा, तो भी मुवक्किल को हर समय यह खयाल रहता है कि पता नहीं क्या होगा। मुकदमे में विजय पाऊंगा अथवा नहीं। बीमार डाक्टर की शरण में जाता है, किन्तु उसको भी प्रतीक्षा रहती है कि कब डाक्टर साहब मुझे इन्जेक्शन और दवाईयों द्वारा स्वस्थ करके नीरोग बनाएगा अथवा नहीं।

२. बच्चों की शरणगति– जैसे बच्चा अपने आपको पिता के अर्पण करता है। बच्चा यदि पिता का हाथ पकड़ता है, तो भी उसे डर रहता है कि हाथ छूट न जाय। परन्तु यदि पिता बालक का हाथ पकड़ता है, तो भी उसे डर रहता है कि हाथ छूट न जाय। इस स्थिति में उसे चोट पहुंचने का हर समय डर रहता है।

३. मुर्दे जैसी शरणगति– मुर्दे के कफन के लिए विशेष दुकान होती है, जो हर समय खुली रहती है, दूसरी जगह से न मिले तो उससे तो अवश्य मिलेगा। यदि हड़ताल होती है तो भी कफन मिल सकता है। असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं। उस स्थिति में यदि कोई रूठा हुआ होता है तो भी अर्थी के साथ अवश्य चलता है। ठीक तू भी जीवित होते हुए मर जा।

मिटा दो अपनी हस्ती को, गर्च मरतबा चाहिये,
दाना खाक में मिलकर, गुले गुलजार होता है।

(३०)

शरीर और मन*

यह शरीर एक मकान है, जो निवास स्थान कुछ समय के लिए मिला है, जिसमें ममता रखकर अपना मकान समझ बैठे हैं। वह मेरा नहीं है। वह पांच तत्वों का बना हुआ है। स्वयं तो बिलकुल ही अपने को वह शरीर समझ बैठे हैं। जब पता लगेगा, तब कहेंगे कि हाय, मैं तो अपने को शरीर समझ बैठा था, वह भूल के कारण। जब मैं ज्ञान में जागा, तब बराबर समझा कि मैं यह घर नहीं हूं, मैं तो उससे भिन्न हूं सत्चित्त आनन्द स्वरूप। आत्मा सब में एक समान सदैव नित्य रहने वाला अजर अमर अखण्ड है। जो एक है, वह सत् परमात्मा सबमें रम रहा है। यह उपरोक्त ज्ञान ही जिज्ञासु के लिए एक खुराक है।

मन पर पूर्ण संयम रखना चाहिए। बुरे संकल्पों से अलग रहना चाहिये। उस पर पूर्ण दृष्टि रखनी चाहिए, नहीं तो बड़ी खराबी होगी। किसी भी बुरे विचार को बार-बार विचारना न चाहिए। पूर्णत: उसकी स्मृति ही मिटा देनी चाहिए। मन की दौड़ बाहर नहीं हो तो समझ लो कि आपके अभ्यास का मन पर प्रभाव पड़ा है। समुद्र में जहाज पर कोई पक्षी बैठा होगा तो वह कहां जायेगा? उड़ते-उड़ते

* २३ सितम्बर १९६१ पर बांटवा में किया गया प्रवचन।

इधर उधर घूम फिर कर फिर भी थककर आकर जहाज पर शान्त करके बैठ जायेगा। वैसे मन भी भले दौड़े। स्वयमेव थककर आकर एक आत्मा में स्थिर होगा। मन कोई वस्तु नहीं है। मन को तुम्हारी ही शक्ति है। तुम मन से भिन्न ज्योति स्वरूप आत्मा हो। ये सूर्य, चन्द्र, तारे सभी तुम्हारे प्रकाश के कारण प्रकाश दे रहे हैं। वे आभास मात्र अल्प हैं। सूर्य दिन को है तो रात को नहीं और चन्द्रमा रात को है तो दिन को नहीं। परन्तु वह ज्योति हो, जो तीनों कालों में प्रकाश कर रही है, न कम न अधिक। वही एक सत्य स्वरूप है तुम्हारी जान। वस्त्र शरीर से भिन्न हैं, वैसे ही आत्मा शरीर से भिन्न है। सब में एक आकाश की तरह व्यापक है। शरीर को जो इन्द्रियां मिली हुई हैं, उनके द्वारा चाहे शुभ कर्म करे अथवा बुरा, शुभ देखे अथवा अशुभ, परन्तु सदैव शुभ देखना चाहिए और इन्द्रियों से शुभ कर्म कराने चाहिए।



(३१)

मन को वश में करो*

ज्ञानी को निश्चय, यथार्थ ज्ञान, साक्षात्कार होने से ही पूर्ण शान्ति प्राप्त होगी और न श्रवण, मनन अथवा निद्ध्यासन से। ज्ञानवान के निश्चय में न संचित कर्म, न क्रयमान कर्म और न प्रारब्ध कर्म होते हैं। वह पूर्ण ज्ञान होने से सब कर्म आभास मात्र समझता है। मन बड़े बड़े विद्वानों और चतुर व्यक्तियों को भी उलझन में डाल देता है। ज्ञानी के निश्चय में न आभास है और न कर्म, वह तो एक ज्योति स्वरूप, अपने आपमें स्थित है। ज्ञानवान से कोई भी कर्म, दु:ख सुख सम्बन्धित नहीं है। उसके निश्चय में यह सब आभास मात्र है।

मन को जीतो– "जिसने मन जीता, उसने जग जीता।" जिसने मन को दास बनाया है, वही मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करेगा। जो जीवन मुक्त नहीं हैं, वही विदेह मुक्त नहीं होगा। जब मन को भगवान का नाम २०० बार माला फेरने के बीच में छोड़ दे तो समझो कि अब मन चंचल हुआ है और यदि पूरे २०० बार माला फेरे तो समझो कि मन अब स्थिर हुआ है। इस मन की सहायता से ही मोक्ष पाया जा सकता है। जिसने मन को वश में किया है, वही सन्त है, वही पूर्ण मन्जिल प्राप्त करेगा। यदि मन को उसने वश में नहीं

* २४ सितम्बर १९६१ को बांटवा में किया गया प्रवचन।

किया तो चौरासी लाख योनियों में दुःख भोगेगा। इस जन्म में मन को जीतकर मनीराम को अपना नौकर अथवा गुलाम बनाकर उससे मोक्ष का काम लेना चाहिये और न विषय विकारों में उसे डुबोया जाय। मन को कामना, विषय, आशा और तृष्णा आदि से खाली करके, अपने आप से प्रेम किया जाय और सदैव मन पर चौकस रहना चाहिये, आत्म आनन्द में स्थित रहना चाहिये।

दुःख किसको– दुःख किसको होता है? शरीर को। चाहे शरीर को कोई धका लगाए अथवा लाठी लगाए और मारे अथवा फांसी दे तो क्या हुआ? कुछ भी नहीं। मैं तो जैसा का वैसा अजर, अमर, अखण्ड स्थित हूं। हृदय शुद्ध होगा तो आत्मज्ञान की बातें भीतर रहेंगी। यदि आत्मज्ञान प्राप्त करने की इतनी बुद्धि न हो, तो प्रार्थना करे कि हे भगवान, मुझे सुबुद्धि और शक्ति दे कि मैं अपने मन को गुलाम बनाऊं। मन को समझाया जाय कि हे मन, तुम ज्योति स्वरूप हो। अन्तःकरण में बिलकुल सच्चाई रखी जायेगी तथा हृदय शुद्ध रखा जाएगा तो तत्काल ज्ञान प्राप्त होगा। ज्ञानवान के पुण्य का फल, जो उसकी सेवा आदि करते हैं, उन्हें मिलता है और ज्ञानवान के पाप का फल उन्हें, जो ज्ञानवान की निन्दा करते हैं, वे ही पाप कर्म के भागी होते हैं। यथार्थ ज्ञान होने से जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति मिलती है। केवल खयाली ज्ञान कथन करने से नहीं अथवा सुनने सुनाने से नहीं मिलती। ऐसा नहीं समझना चाहिए कि बस यह पूर्ण ज्ञानी हो गया। नहीं नहीं जिसे आत्मा साक्षात्कार हुआ है, वही जीवन-मुक्त है और विदेह मुक्त होगा और जाकर अखण्ड आनन्द, आत्मानन्द में लीन होगा।

---

(३२)

ब्रह्माकार वृत्ति*

ऐसा नहीं कि हमने आत्मध्यान आधा घन्टा अथवा एक घन्टा किया तो बस शान्ति मिल जायेगी। नहीं नहीं, हम सोलह घन्टे तो करते रहें अन्य काम काज, शेष थोड़ा समय मन को दें आत्मध्यान के लिए तो क्या हम पूर्ण आनन्द पा लेंगे? नहीं। आत्मआनन्द, आत्मज्ञान, आत्मध्यान के लिए सदैव ब्रह्माकार वृत्ति स्थित हो। चलते फिरते, कामकाज करते हुए भी मन प्रियतम में स्थित रखा जाय, शेष काम बाह्य ढंग से करते रहना चाहिए। मन को काम में फंसाना नहीं चाहिए। मन सदैव उस ध्यान में रहे और मन का साक्षी होकर उसे आत्मध्यान में दृढ़ रखा जाय। यदि मन चंचल हो तो तत्काल मन को लौटा कर, आत्मा में स्थिर किया जाय और उसे आत्मा से कदापि न हटाया जाय, चाहे कितनी भी कठिनाइयां आवें। वीर होकर उनका सामना किया जाय, कभी पीछे न हटना चाहिये। न ही दुःख की परवाह की जाय, न ही सुख की। दुःख सुख शरीर से सम्बन्धित हैं। जब तक शरीर है, तब तक दुःख सुख आते जाते रहेंगे। न दुःख रहेगा, न सुख; ये बदलते रहेंगे। ये परिवार आदि सब आभास मात्र हैं। ज्ञानी का यही दृढ़ निश्चय होता है कि चाहे सब नाश हो जाय, तो भी उसे कोई दुःख, हर्ष, शोक नहीं है। वह सदैव समदृष्टि, अपने

* २५ सितम्बर १९६१ को बांटवा में किया गया प्रवचन।

आत्मा में मस्त रहना है। वे मृत्यु अथवा जन्म सब आभास परछाईं अथवा छाया समझते हैं। वास्तव में जन्म है ही नहीं। जो जन्मा नहीं तो मृत्यु किसकी? मोक्ष किसका? एक आत्मा के अतिरिक्त और कहीं भी मन को नहीं लगाएं, प्रयत्न करके अभी ही ध्यान आत्मध्यान में स्थित करके, वह अखण्ड आनन्द प्राप्त कीजिए, जो कदापि नाश न हो और न ही होगा। अपने को स्वप्न में भुला बैठे हैं। जब जागते हैं, तब जानते हैं कि मैं तो इस सपने का दर्शक था। यह संसार एवं शरीर परिवर्तित होते रहेंगे, बादलों की भांति आते-जाते रहेंगे।

विद्या वह, ज्ञान वह, जो कन्ठ हो और पैसा वह जो गांठ में हो। जिसमें देवी सम्पदा गुण हैं, वही मोक्ष प्राप्त करेगा। योग, तप, मन्त्र आदि से मन शुद्ध होता है और तत्पश्चात् ज्ञान होता है। मोक्ष का उपाय एक आत्मज्ञान है यथार्थ ज्ञान है। ज्ञान अर्थात् अनुभव, जानकारी, समझबूझ। जिसमें पूर्ण साक्षात् ज्ञान और दैवी सम्पदा गुण आते हैं, उसे ही ज्ञानी समझना चाहिये। वह कैसा ज्ञान? एक आत्मा का, और कोई ज्ञान नहीं।



(३३)

दृष्टा और दृश्य*

एक थाल है जड़। उसे प्रकाशित करता है दीपक। दीपक को जानता है मन। मन को जानता है चोथा आत्मा। इससे सिद्ध हुआ कि आत्म ज्योति के सहारे मन प्रतीत हुआ। मन के कारण दीपक, दीपक से उस जड़ थाल को अन्धकार में हमने देखा।

आत्म ज्योति के सहारे से, उसकी सहायता से ही यह सब कुछ देख रहे हैं। आत्मा सत् है, वह जानकारी जानने वाला सत् है। आनन्द ही सत् है, अन्य सब है शून्य। 'जग सारा सपना।' यह जगत् न पहले था, न बाद में रहेगा; केवल बीच में दीखता है। यह इस प्रकार, जिस प्रकार दर्पण में गुलाब के फूल की लाली दीखती है, जो लाली गुलाब की है। वैसे यह जो भी दीखता है, वह भी तुम्हारी ज्योति की ही लाली अथवा झलक है, आभास मात्र है।

शब्द, रूप, रस और गंध को जानने वाला सत् आत्मा है, जो कभी नष्ट नहीं होता। सब में आकाश वत् व्यापक है सबका आधार है। एक ज्ञान है, उस ज्ञान से ही सबको जान सकते हैं। वह द्दष्टा है, अन्य द्दश्य हैं। दृष्टा दृश्य से भिन्न है। जो सत् व्यापक एक है, वही नूर है, वही आत्मा है। ज्ञानी उसे कहा जाय, जिसमें सतो गुणी स्वभाव है, देवी सम्पदा गुण हैं। किसी को तब ज्ञानी नहीं समझना चाहिये, जब तक उसमें ये गुण न आवें।

* २६ सितम्बर १९६१ को बांटवा में किया गया प्रवचन।

(३४)

विषय भोग और गृहस्थ*

जो विषय भोगों को मक्खन और पेड़े समझते हैं, वे मानों चूना खाते हैं। चूना खाने वाले की क्या दशा होती है? वह मर जाता है। जैसे सांप को हाथ लगाने से सांप का विष चढ़ जाता है, वैसे विषय भोग भी विष के समान हैं। लेश मात्र भोगने से भी बहुत दु:ख सहन करने पड़ते हैं। जिसको ज्ञान रूप नेत्र हैं, शुद्ध बुद्धि रूप शुद्धता है और दृष्टि रूप शास्त्रों का प्रमाण है कि वह ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष को अवश्य प्राप्त करेगा, अन्य कुछ नहीं। भले ही दर्पण शुद्ध हो, परन्तु यदि हिलता रहेगा तो उसमें अपना मुख नहीं देख सकेंगे। हमारा दर्पण है शुद्ध हृदय, किन्तु यदि स्थिर मन न होगा तो अपना स्वरूप अर्थात् आत्मा कैसे देख सकेंगे? अत: काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदि विषयों के समूह से जब हम अपने को बचाएंगे, तब मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

फूल– स्वामी विवेकानन्द जी ने भी कहा है कि जहां फूलों की सुगन्ध है, वहां भ्रमर स्वयमेव आएंगे। वैसे जिसका हृदय शुद्ध है, पवित्र है, उसे ज्ञान है और शास्त्रों के प्रमाणों रूप दर्पण है, वहां कई आकर सुगन्ध लेते हैं।

* १० जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

संतान तथा गृहस्थ– विवाह है सन्तान के लिए। दो चार बच्चे हों तो फिर स्त्री पुरुष दोनों को वानप्रस्थी होकर रहना चाहिये। तभी वे उन्नति को प्राप्त कर सकेंगे और मोक्ष प्राप्त करेंगे।

ज्ञानी, सत्पुरुष, आचार्य को दूसरे पहचान नहीं सकते। उसे केवल सच्चे जिज्ञासु ही पहचान सकते हैं, वे ही उस ज्ञानी के रहस्य को, कथनी करनी, आचार विचार को जान सकते हैं और न कोई दूसरा।

(३५)

तीनों कालों में सत्*

शरीर सुन्दर नहीं है, यदि होता तो प्राण निकल जाने के पश्चात् भी सुन्दर लगता। इस शरीर को वहां छोड़कर आएंगे, जहां कौए बीठ छोड़ते रहते हैं तथा मूत्र करेंगे। मन के समक्ष बार बार उपरोक्त विचार रखने चाहिये। शरीर को न सुन्दर, न सत् और न आनन्द रूप जानकर देहाभिमान त्याग करके आत्म निश्चय रखना चाहिये।

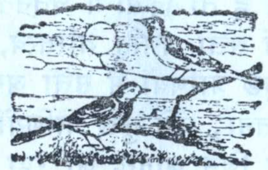
जिस प्रकार संसार के पदार्थों में हमारी प्रीति है, उस प्रकार आत्म ज्ञान, आत्म ध्यान, आत्मानन्द में प्रीति रखें। जगत् के पदार्थों, वासना, काम, क्रोध आदि से प्रीति हटाकर आत्मा में ऐसी प्रीति रखें, फिर मोक्ष तत्काल। जो सच्चा जिज्ञासु है, वह मोक्ष को अवश्य प्राप्त करेगा। किन्तु लगातार अभ्यास, चिन्तन, ध्यान करते रहना चाहिये, फिर निश्चय ही आ जाएगा।

अपनी सूरत को देखने के लिए तीन चीजों की आवश्यकता रहती है। एक निर्मल दर्पण, दूसरा नेत्र, तीसरा प्रकाश है। आत्मा के नेत्र हैं ज्ञान, वेद, शास्त्र; उसका प्रमाण है शुद्ध दर्पण।

न मैं, न मेरा, न पराया, किसका, मैं मैं कहने से मेरा कहा जाता है। अतः अहमता, ममता का त्याग करके, सच्चे आत्म की "मैं" धारण करो।

* २२ जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

हम परमानन्द स्वरुप पर ब्रह्म हैं, सब में हमारी छाया है। यह जो आनन्द विषयों में भासता है, वह विषयों का आनन्द नहीं है; वह आनन्द ब्रह्म का है, केवल आनन्द ही आनन्द! हम आनन्द रूप ब्रह्म पहले भी थे, अब भी हैं और बाद में भी रहेंगे। यह जगत् पहले भी न था, बाद में भी न रहेगा, किन्तु बीच में जो दीखता है वह खाक है। आरम्भ में केवल एक आनन्द तत्व था, वैसे अब भी अस्तित्व ब्रह्म का है। जैसे सोना पहले भी सोना था, अब उस में से आभूषण बने तो भी सोना है, फिर जब सभी आभूषण नाश हो जाएंगे, तो भी वह सोना ही है। वैसे केवल आनन्दरूप पारब्रह्म ही सत् है।



(३६)

इच्छा की निवृत्ति*

जैसे सूर्य की छाया, जो पानी में दीखती है, वह सच्चा सूर्य नहीं है, किन्तु सूर्य का आभास मात्र है, वैसे विषय भोगों में जो आनन्द प्रतीत हो रहा है, वह भी आभास मात्र है, वह सच्चा आनन्द नहीं है। फिर जो आभास आनन्द क्षण मात्र है, वह भी ब्रह्म का ही आनन्द है। जैसे सूर्य का आभास सूर्य का ही रूप है, वैसे जो आनन्द हम जान रहे हैं, वह सब पारब्रह्म परमेश्वर का है और जो चेतनता देख रहे हो, वह भी ब्रह्म की ही है। वह पारब्रह्म परमेश्वर एक ही सत् चेतन तथा आनन्द स्वरूप है। किसी में सत्ता रूप में भास रहा है तो किसी में चेतनता रूप में, तो किसी में आनन्द रूप में सत्ता अर्थात् अस्तित्व, जैसे जड़ पदार्थ में चेतनता, जैसे कुछ प्राणियों में सत्ता अर्थात् अस्तित्व, जैसे जड़ पदार्थ में चेतना, जैसे कुछ प्राणियों में ज्ञान और कुछ में आनन्द अर्थात् जिसे आनन्द आ रहा है, किन्तु जिसका हृदय शुद्ध है, उसे पारब्रह्म परमेश्वर एक ही अभेद रूप में प्रतीत हो रहा है, जो सत् भी स्वयं, चेतन भी स्वयं और आनन्द भी स्वयं, सच्चा आनन्द स्वरूप।

स्वामी राम तीर्थ जी महाराज के पास एक सज्जन ने जाकर प्रार्थना की कि "स्वामी जी" मुझ पर ऐसी कृपा कीजिये, जो मैं दुनिया का राजा बनूं।" स्वामीजी ने कहा

* २३ जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

कि "दुनिया का राजा बनकर फिर क्या करोगे?" कहा- "आनन्द मिलेगा, प्रसन्नता प्राप्त करूंगा।" स्वामीजी ने उत्तर दिया- "समझो कि तुम राजा बने हो, तुम्हारी इच्छा निवृत्त हो गई, उस इच्छा निवृत्ति के पश्चात् आनन्द तथा प्रसन्नता प्राप्त हुई है, वह आनन्द राजा होने में नहीं है, परन्तु राज्य मिलने के पश्चात् इच्छा की निवृत्ति हो गई, तब तुम्हें आनन्द मिला। अतः यदि तुम अभी भी इच्छा का त्याग करो, तो तुम्हें आनन्द ही आनन्द मिलेगा। जिस आनन्द के लिए तुम राज्य मांग रहे हो, उससे अधिक आनन्द तो इच्छा की निवृत्ति में है।"

(३७)

दर्शन कब*

शान्त हृदय में ही सत् चेतन और आनन्द स्वरूप पारब्रह्म परमेश्वर का साक्षात् दर्शन हो सकता है, और वह फिर समझता है कि यह तो मेरा ही स्वरूप है। जो बहुत प्रवृत्ति के कारण परम तत्त्व का चिन्तन नहीं कर सकता है, वह सब काम काज आदि प्रवृत्ति में होते हुए भी अस्ति भाति और प्रिय का ध्यान करे, उस ध्यान से भी परम तत्त्व को प्राप्त कर सकता है और उसमें ही लीन हो जाता है।

भोग– भोग हम नहीं भोगते, भोग ही हमें भोग रहे हैं। क्षणिक सुख के लिए बल, बुद्धि, आयु और स्वास्थ्य को नष्ट कर रहे हैं। वह क्षणिक सुख भी भोग में नहीं है, वह भी हमारे मन को स्थिरता के होने के कारण, इच्छा के निवृत्त होने पर प्रतीत होता है। तब जो आनन्द मिला, वह हमारे ही आत्मा का है और भोग भोगने का नहीं।

इच्छा की निवृत्ति से मन शान्त होता है और आनन्द मिलता है। बस वही सच्चा आनन्द है। अत: सब इच्छाओं और वासनाओं का त्याग करो तो मन शान्त हो और अन्त:करण का आनन्द प्राप्त हो। जो आनन्द स्वरूप पर ब्रह्म परमेश्वर का स्वरूप है, वह हम स्वयं ही हैं। इच्छाओं के त्याग में ही सच्ची शान्ति है। त्याग से ही सच्ची शान्ति में स्थित हो जाते हैं। सोने में आभूषण कल्पित हैं, मिट्टी में घड़े कल्पित हैं। सोने और मिट्टी के अतिरिक्त कुछ भी बना ही नहीं। वैसे जगत् भी ब्रह्म में कल्पित है, ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ बना ही नहीं।

---

* २४ जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

(३८)

वृत्तियों का अभाव*

निर्विकल्प समाधि से अन्त:करण की वृत्तियों का बिलकुल अभाव हो जाता है, तब शेष आनन्द ही रहता है। वही सत् है, शेष उसके अतिरिक्त सब असत् है। ज्ञान होने के पश्चात् कोई भी कामना इच्छा नहीं रहती। यथार्थ पूर्ण ज्ञान से ही मुक्ति मिलती है। जिस को दृढ़ निश्चय हुआ है कि जगत् मिथ्या है और मैं सत् चित्त आनन्द स्वरूप परमात्मा हूं, वह मुक्त है। पूर्ण परमानन्द प्राप्त करने के लिए सविकल्प समाधि और निर्विकल्प समाधि लगाकर और श्रवण, मनन और निद्ध्यासन से उस पूर्ण आनन्द का अनुभव होता है और अनुभव करने पर स्वयं कहता है कि वह आनन्द स्वरूप परब्रह्म मैं हूं। ज्ञानी यद्यपि बाह्य कामकाज करता है, तो भी वह आत्म आनन्द में रमण कर रहा है, उसको शारीरिक भाव कुछ भी नहीं भासता है। वह तो अशरीरी हो चुका है आठों पहर आनन्द ही आनन्द में रमण कर रहा है। जिसकी ऐसी अवस्था है, वह धन्य है तथा पूज्य है। तुम केवल अपना हृदय शुद्ध रखो। आत्मा तुम्हारे भीतर बैठा है, वह स्वयं ही तुम्हें सच्चा ज्ञान देगा और जो जो शंका तुम में उत्पन्न होगी, वह तुम्हें भीतर बार बार स्वयं समझाएगा। ज्ञानी को खान पान की कोई चिन्ता नहीं रहती। उसे प्रारब्ध के अनुसार स्वयं ही मिलता है और उसके शरीर का पालन-पोषण होता रहता है।

---

* ६ जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

(३१)

ज्ञान और कर्म फल*

ज्ञानी न कर्त्ता है, न भोक्ता और न उसकी मौत है। आत्मा का जन्म ही नहीं, तो कर्त्ता भोक्ता कौन होगा? प्रारब्ध कर्म शरीर से लगते हैं, ज्ञानी तो शुद्ध चेतन आत्मा है। जो ज्ञानी की सेवा करते हैं, उन्हें पुण्यों का फल मिलता है और जो ज्ञानी की निन्दा आदि करें अथवा उसे दुःख देते हैं, वे पाप के भागी होते हैं। संचित कर्म अर्थात् जो पहले करके आया है, वे ज्ञानी की ज्ञान अग्नि से भस्म हो जाते हैं, वे ज्ञानी को स्पर्श नहीं कर सकते। अधिभौतिक दुःख अर्थात् शरीर के (दुःख बीमारी) आदि अधिदैविक दुःख अर्थात् गर्मी, वर्षा, ओले आदि अध्यात्मिक दुःख अर्थात् शेर, सांप आदि जीवों से मिला हुआ दुःख, ज्ञानी के तीनों ताप नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि ज्ञानी स्वयं तो आत्मा है। ज्ञानी को उपरोक्त दुःख स्पर्श नहीं कर सकते। दुःख कौन भोगता है? आत्मा में तो दुःख है ही नहीं। शेष प्रारब्ध कर्म भी शरीर भोगकर छूटेगा। आत्मा में न कर्म हैं, न धर्म, न पुण्य, न पाप। जो जन्म मानेगा, वह मरेगा भी। ऐसी बात महामुनी शुकदेव जी ने राजा परीक्षत को बताई है। अतः आत्मा का जन्म नहीं। आत्मा कमल फूल की भांति निर्लेप है। तुम वह आत्मा हो, जो कभी नाश नहीं होता।

---

* १२ जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

अज्ञानी दुःखी होकर कहता है कि मैं पाप कर्म का फल भोग रहा हूं। ज्ञानी के लिए न पुण्य कर्म का फल सुख है और न पाप कर्म का फल दुःख। ज्ञानी के लिए न सुख है, न दुःख। ज्ञानी तो सर्वदा एक रस स्व स्वभाव में स्थित रहता है, जो शुद्ध चेतन आनन्द स्वरूप है।

ईश्वर अंश, जीव अविनासी,
चेतन अमल, सहज सुख रासी,
सो माया वश भयो गोसाई,
भयो जीव मरकट की नियाई।

(४०)

नित्य आनन्द कैसे मिले ?*

यह समस्त विशाल संसार ही ज्ञानी का घर है। चौदह ही लोकों में स्वयं ही स्वयं चेतन सम्पूर्ण है। लेश मात्र भी जगह नहीं।

दादू दावा छोड़ दे, बिन दावा दिन काट।

यदि कोई कहे कि यह काम मैं दावा के साथ कर सकता हूं, परन्तु कौनसा भरोसा है शरीर पर? एक सैकण्ड में नाश हो सकता है, सदैव सचेत सजग रहना चाहिये। यह सृष्टि इस प्रकार है, जैसे सपने में अपने को भूल जाने से ही अनेक आकारों के साथ प्रतीत होकर दीखने में आती है। जागने के पश्चात् कछ भी नहीं दीखता सिवाय चेतन आत्मा के, जो तीनों कालों को प्रकाशित कर रहा है, वह सत्य स्वरूप है। भगवत् ध्यान, भगवत् ज्ञान, भगवत् आनन्द में स्थित होना है। पूछोगे कि महाराज! भगवान का रूप कैसा है? क्या ये दृश्य आदि? नहीं नहीं, भगवान का स्वरूप किसी भी विषय के अतिरिक्त है। वह भगवान का स्वरूप है, तुम कहोगे कि स्वामी, भला भगवान के दर्शन कैसे हों? भाई, भगवान तो प्रतिदिन दर्शन दे रहा है। सुषुप्ति अथवा गहरी नींद में जो आनन्द मिल रहा है, जो देख रहे हैं कि किसी भी विषय सम्बन्ध के अतिरिक्त है, वहां कोई भी विषय

* १३ जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

पदार्थ अथवा मन की वृत्ति नहीं है, तो फिर वह आनन्द कहां से आया? वह आनन्द कहीं बाहर से नहीं आया। वह आनन्द हमारे भीतर है। यदि भगवान को बाहर खोजने जाएंगे तो यह हमारी बड़ी भूल है। पारब्रह्म परमेश्वर हमारे भीतर हैं, केवल आनन्द ही आनन्द है।

तुम पूछोगे कि महाराज, भला यह आनन्द जाग्रत में भी सदैव कैसे हो? सुनो, शरीर से ऊपर हो जाओ अर्थात् शरीर को स्वयं न समझकर, शरीर को आभास मात्र जानकर, भगवत् ध्यान में लगाना चाहिये अथवा काम में लग जाना चाहिये, किसी भी प्रकार शरीर से ऊपर होना चाहिये।

(४१)

सब का आधार*

स्वयं को अविनाशी अखण्ड आनन्द ही आनन्द स्वरूप जानकर, सर्वदा उसी आनन्द ही आनन्द में स्थित रहना चाहिए। यही तो ईश्वर दर्शन है। बस, विश्वास कर लेना चाहिए कि आनन्द मेरी जान है, सिवाय मुझ आनन्द स्वरूप परमात्मा के अन्य कुछ चौदह लोकों में बना ही नहीं, ऐसा दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये। स्वयं को भूलने से, शरीर आदि जगत् के पदार्थ प्रतीत हो रहे हैं और अपने को यथार्थ समझने से, शेष एक ही आनन्द स्वरूप रहता है।

पूछोगे कि स्वामी जी, फिर भला ये पदार्थ आदि जो दीख रहे हैं? भाई, वे उस प्रकार हैं, जैसे लहरें, बुदबुदे, छोटी लहरें, बड़ी लहरें, उन सबका आधार एक ही जल है। जल के अतिरिक्त अन्य कुछ बना ही नहीं, अथवा जैसे अनेक घड़े हैं, उन सबका आधार मिट्टी ही है। मिट्टी के अतिरिक्त कुछ बना ही नहीं। मिट्टी न हो तो क्या घड़े बनेंगे? नहीं। वैसे जो कुछ हम देख रहे हैं, उन सबका आधार एक ही आनन्द स्वरूप परमात्मा है। उन सबमें सता आनन्द की है ये सभी आनन्द स्वरूप ही तो हैं।

* ८ जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

(४२)

ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं*

यह संसार क्षण भंगुर है। उसका अभाव करके, ब्रह्मभाव रखना चाहिये। बार बार इस मांस रूप थैले से बाहर निकल कर स्वयं को मांस रूपी थैले को साक्षी दृष्टा समझना चाहिये।

"जब लग फांसी मजहब की, तब लग होत न ज्ञान।"

यह सब सच्चिदानन्द ही सच्चिदानन्द है। न स्त्री, न पुरुष; न बूढ़ा, न जवान; न वर्ण, न आश्रम; न ब्रह्मण, न क्षत्रिय; न वैश्य, न शूद्र, न ब्रह्मचारी, न गृहस्थी; न वानप्रस्थी न संन्यासी; यह सब ब्रह्म ही ब्रह्म है। तीन शरीर तीन हत्याएं हैं। उनसे जितना शीघ्र हो सके, उतना शीघ्र बचा जाय। स्वयं को उन तीन शरीरों से भिन्न साक्षी ज्ञान स्वरूप जानकर सत् ज्ञान और आनन्द में स्थित रहना चाहिये।

विवेक अर्थात् सत् असत् का ज्ञान, सत् का ग्रहण करके असत् का त्याग करना। संसार न सुन्दर है, न सत् है और न आनन्द स्वरूप है। आनन्द हमारी जान है, ऐसा दृढ़ निश्चय करना चाहिये।

स्वयं के अतिरिक्त चाहे समस्त दुनिया घूमे तो भी आनन्द कहीं भी प्राप्त न होगा। ऐसा दृढ़ निश्चय मन में होने से मन भटकना छोड़ देगा। आनन्द वह सच्चा, जो किसी भी विषय सम्बन्ध के अतिरिक्त हो, उस शुद्ध आनन्द को ही ब्रह्मानन्द कहा जाता है। वह आनन्द हमारे भीतर है, हम स्वयं वह आनन्द स्वरूप हैं।

* ८ जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

(४३)

ध्यान और चिन्तन*

निराकार ब्रह्म का वेदों एवं शास्त्रों में जो वर्णन किया गया है, उस स्वरूप का जिज्ञासु को चाहिए कि ध्यान एवं चिन्तन करे। चिन्तन तथा ध्यान करते करते वही स्वरूप हो जाना चाहिए। इसके लिए बार बार ब्रह्म स्वरूप का ध्यान चिन्तन करते रहना चाहिये। 'जगत् मिथ्या ब्रह्म सत्' करके समझना चाहिये। जगत् है असत्, जड़ एवं दुःख रूप और ब्रह्म सत् चित्त और आनन्द स्वरूप।

जैसे सपने की सृष्टि मिथ्या है, वैसे जाग्रत की सृष्टि भी मिथ्या कल्पित है। जाग्रत की सृष्टि स्वप्न में नहीं है, स्वप्न की सृष्टि जाग्रत में नहीं है। इससे प्रमाणित हुआ कि दोनों सृष्टियां मिथ्या हैं।

वैराग्य का अर्थ है किसी भी दुनिया के पदार्थ में मन अन्यथा प्रीति न हो और न कोई वासना ही रहे। ऐसा नहीं कि हाथ में कमण्डल उठा कर, जटाएं रख कर, लम्बा कुर्ता पहने तो उसे वैराग्य कहा जाएगा। हृदय में यदि वासनाएं पड़ी होंगी तो उसे वैराग्यवान नहीं कहा जा सकता।

जिसका अज्ञान कर्म और वासनाएं दूर हो जाती हैं, वह विदेह मुक्त हो जाता है, जिसका फिर जन्म नहीं होता।

---

* ६ जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

(४४)

आधार को देखो*

लहरों को छोड़कर उसके आधार जल को देखो, आभूषणों को छोड़कर उसके आधार स्वर्ण को देखो, बर्तनों को छोड़कर उसके आधार मिट्टी को देखो। वैसे जगत् के नाम रूप को छोड़कर उसके आधार आनन्द स्वरूप परमात्मा को देखो, निज आनन्द स्वरूप भगवत् को देखो।

जब कोई विद्यार्थी कठिन प्रश्न हल करना चाहता है, तब सियाही, कलम और स्वयं को भूल जाता है। जब वह प्रश्न हल कर लेता है, तब उससे पूछा जाय कि आनन्द आया अथवा नहीं, तो कहेगा कि आया! वैसे जब जिज्ञासु पूर्ण रीति से स्वयं को जानने लगता है, तब शरीर, लिखने पढ़ने आदि सबको भूल जाता है, फिर उससे पूछ कर देखा जाय कि आनन्द आया अथवा नहीं? वह आनन्द ही भगवान का स्वरूप है। आनन्द स्वरूप भगवत् के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। सब अपना ही काल्पनिक बाग है। मृत्यु के लिए तैयार रहना चाहिए। जभी बुलावा हो तो किसी में मोह, ममता रखने के सिवाय तत्काल चले जाना चाहिए।

विवेक कहां से मिलेगा? सत्संग कैसा हो? जिसने सत्य को प्राप्त किया है, उसका संग करना चाहिए अथवा सतत्

---

* १५ जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

शास्त्रों का अध्ययन उससे मिलता है, सत् और असत् का विवेक। असत् को छोड़कर, सत् वस्तु आत्मा का ही संग करना चाहिये, उसे ही कहा जाता है सत्संग। किन्तु आज-कल सत्संग बहुत से हो गए हैं। सत् पुरुष कोई बिरला है। भारत में बहुत से लाल पड़े हैं। जैसे यहां लाल गुफा में एक बंगाली सन्त ने ३२ वर्षों की आयु में आकर ५३ वर्ष भगवान का भजन किया।

जाग्रत में कार्यों में प्रवृत होते हुए भी सदैव आनन्द में रहना चाहिये। स्वयं को शरीर न समझकर, फिर चाहे ध्यान किया जाय अथवा कर्म में लगा रहा जाय, तो भी सर्वदा एक रस आनन्द में रहा जा सकता है। कहोगे कि गृहस्थ में भी उस आनन्द रूप भगवान को प्राप्त किया जा सकता है? हां, जैसे राजा जनक आदि ने गृहस्थ में रहते हुए भी ज्ञान प्राप्त किया। तो क्षीण बुद्धि वाला तत्काल शंका उठाएगा।

बुद्धियां चार प्रकार की हैं। प्रारब्ध कर्म अनेक रहे पड़े हैं। जैसे अनाज के ढेर से कुछ खाया गया है, शेष खाना है तब जाकर अनाज का ढेर समाप्त हो। वैसे जीव के अनेक जन्मों के पाप पुण्य आकर इकट्ठे हुए हैं। जब वे समाप्त हों, तब ज्ञान प्राप्त करके जन्म मृत्यु से छूटेगा।



(४५)

सत वचन*

महामुनि अष्टावकर ने राजा जनक को उपदेश किया है कि न जाग्रत वाली सृष्टि सत्य है और न सपने वाली, दोनों मिथ्या हैं। चाहे मनुष्य समस्त संसार के साहित्य को पढ़ जावे, परन्तु जब तक आत्मज्ञान न हुआ है, तब तक कुछ न हुआ। आत्मज्ञान के अतिरिक्त शांति नहीं मिलेगी।

बिलकुल सावधान होकर सत्संग सुनना चाहिये। मन को बिलकुल एकाग्र करके, सुनाने वाले के सामने दृष्टि रखी जावे। हमने भी बहुत कष्ट सहन करके ज्ञान प्राप्त किया। गुरु की सेवा स्थान की सफाई, गौ-सेवा, पानी भरने आदि के काम किये थे, तब कहीं एक पाठ मिलता था। इतना होते हुए भी गुरु का डण्डा ऊपर से होता था। खुद को पाखाना (विष्टा) भी उठाना पड़ता था। जब लहर आती है, तब सन्त अपने मुखारविंद से ज्ञान की वर्षा करते हैं।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय,
जो दिल खोजा अपना, तो मुझसे बुरा न कोय।
जहां दया तहां धर्म है, जहां लोभ तहां पाप,
जहां क्रोध तहां काल है, जहां क्षमा तहां आप।
दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान,
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्राण।
सत बराबर तप नहीं, झूंठ बराबर न पाप,
जाके हृदय सांच है, ताके हृदय आप।
तुलसी इस जग में आय के, कर लीजै दो काम,
देने को टुकड़ा भला, लेने को हरि का नाम।

* १६ जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

(४६)

भगवत् दर्शन*

भगवान का हमें प्रतिदिन दर्शन हो रहा है, परन्तु हमें उसका ज्ञान नहीं। स्वामीजी, भला उसका स्वरूप क्या है? बाबा, उसका स्वरूप आनन्द है। गहरी नींद में हमें प्रतिदिन दर्शन होता है। जो किसी भी विषय सम्बन्ध रहित शुद्ध आनन्द है, वही भगवान का स्वरूप है। स्वामीजी, भला उस आनन्द स्वरूप का जाग्रत में भी सदैव दर्शन हो सकता है। हां, शरीर को भुलाकर अर्थात् देह अभिमान त्याग करके भगवत् स्वरूप आनन्द का ही ध्यान करते रहना चाहिये अथवा काम में लगा रहना चाहिये, अर्थात् नाम स्मरण में तो फिर सदैव आनन्द ही आनन्द है। आनन्द स्वरूप भगवान के अतिरिक्त अन्य कुछ भी दीखने में न आएगा।

हमारी जान पारब्रह्म परमेश्वर है। वह सबकी जान है। पारब्रह्म ही विभिन्न भेष पहनकर अनेक रूपों में दर्शन दे रहा है। आनन्द ही आनन्द रूप भगवत्।

ये तीन शरीर ही तीन हत्याएं हैं। उनसे जितना शीघ्र हो सके, उतना शीघ्र छुटकारा पाना चाहिए। स्थूल शरीर तो सौ वर्ष पूरे करके अग्नि में भस्म हो जायेगा, किन्तु सूक्ष्म शरीर में जो कर्म वासनाएं और अज्ञान रहा हुआ है, वह तो फिरता रहता है। तीसरा कारण शरीर तो बड़ा दुःखदायक हैं। जो अज्ञान है, वह इन तीन शरीरों को स्वयं समझने से बड़ी आपदा का कारण है। "मैं" से ही मेरा कहा जाता है 'किन्तु न मैं हूं, और न मेरा' तभी ही भगवत् दर्शन होगा।

---

* १७ जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

(४७)

मन के कहे पर मत चलो*

समस्त आयु पुस्तक पढ़ने से, उधर सत्संग की एक घड़ी से समस्त वेदान्त के सार का पता पड़ जाता है।

गुरु अर्थात् प्रकाश देने वाला। एक सौ चन्द्रमा उदय हों तो भी हृदय के भीतर प्रकाश नहीं कर सकते, भीतर का प्रकाश गुरु दे सकता है।

पारब्रह्म, परमेश्वर आत्मा ही हमारी जान है, केवल आनन्द ही आनन्द रूप निर्गुण, निराकार और न दृश्य साकार।

प्रथम आत्मा एवं परमात्मा में विश्वास रखना चाहिये। ब्रह्म सत, जगत् मिथ्या, जिस प्रकार रस्सी में सांप। मैंने जो कहा, वह सत् है।

अनन्त ज्ञानी कोटि को निश्चय निज मत एक।
एक अज्ञानी के हृदय में वर्तित मतों अनेक।

एक ब्रह्म सत्, जगत् मिथ्या, सत्य वाक्य गुरु वेद है श्रद्धा उस विश्वास अर्थात् गुरु और शास्त्र जो कहते हैं, वे वाक्य सत्य हैं। ये अन्य जो निष्काम अथवा भक्ति, उपासना योग आदि किए जाते हैं, वे सभी साधन हैं भगवान प्राप्ति के लिए। मोक्ष का साधन एक ही ज्ञान है, ज्ञान से मोक्ष मिलता है।

पहले विश्वास रख कर, तत्पश्चात् शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिये कि जो भी लिखा है, वह सत् है।

मन मति न चलिए, मन है नीच ते नीच।
विषय - लालच लाय के, डारेगा भव कीच।

---

* १८ जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

(४८)

ज्ञान, ज्ञानी और कर्म*

स्वयं को भगवान से भिन्न जान कर, जो उसकी पूजा आदि करता है, वह जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता रहेगा, क्योंकि जो द्वैत मानेगा, वह भय को प्राप्त होगा। यह जो संसार में कहा जाता है कि भगवान की भक्ति आदि करो अथवा उसका नाम आदि जपो, यह केवल है लोगों को प्रवृत्त करने के लिए, जब तक अपने को समझे कि भगवान पारब्रह्म परमेश्वर एक ही खुद स्वयं है। मन को अस्ति, भाति, प्रिय स्वरूप दिखाते रहना चाहिये। इस प्रकार मन स्वयं ही थककर शान्त होकर बैठ जाएगा। तात्पर्य यह कि मन को सदैव उपरोक्त ध्यान में रखना चाहिये। उसे तत्पर रखना चाहिये। जो पदार्थ उसके सामने फिर कर आवे, उसमें अस्ति, भाति, प्रिय देखना चाहिये। नाम रूप को समझना चाहिये। जैसे जल में लहरें, रस्सी में सांप भासता है, किन्तु है नहीं। स्वप्न की सृष्टि देखते भी मिथ्या है अर्थात् असत् है। लहरों को छोड़कर उसके आधार पानी को देखो। जेवरों को छोड़कर, उसके आधार सोने को देखो, मिट्टी के बर्तनों को छोड़कर, मिट्टी को देखो। फिर जिस प्रकार लहरें जल रूप है, आभूषण सोना रूप हैं, बर्तन मिट्टी का ही रूप हैं, वैसे जगत् ब्रह्म का ही स्वरूप हैं। जल और लहरों में कोई

* २० जून १९६४ को आबू पहाड़ पर किया गया प्रवचन।

भेद है क्या, सोने और आभूषणों में भेद है क्या? नहीं। वैसे ब्रह्म और जगत् में भी भेद नहीं है। एक ही एक ब्रह्म फिर आकाश की भांति असंग भी है, क्योंकि आकाश सब को धारण कर रहा है, तो भी असंग है। सूर्य का प्रकाश सब पर पड़ रहा है, परन्तु है असंग।

प्रारब्ध के वेग के कारण ज्ञानी सब कर्म करता है, भोग भोगता है। नहीं तो अकर्ता और उपभोक्ता है। ज्ञानी को कोई लेप नहीं लगता। वह निर्लेप है।

ज्ञान तीन घड़ियों में हो सकता है, चाहे ज्ञान भले ही युगों का हो, जैसे प्रकाश होने से अंधकार का तत्काल अभाव हो जाता है, वैसे एक घड़ी में श्रवण करके, दूसरे में मनन करके, तीसरी में निद्ध्यासन करके, दृढ़ निश्चय से ज्ञान हो सकता है।

शरीर और नाम का अभिमान त्याग करके आत्म अभिमान रखना चाहिये, ताकि आत्म अभिमान ही रहे। अब यदि तुमसे कोई पूछे कि तुम्हारा नाम क्या है? चाहे गीता तुम्हारे सर पर रखे तो भी कहोगे कि मेरा नाम घनश्याम है। वैसे जब स्वयं को आत्मा समझोगे, दृढ़ निश्चय रखोगे, तब चाहे तुम्हारे सर पर कोई गीता रखे तो भी कहोगे कि मैं आत्मा हूं और न शरीर।

ज्ञानी का शरीर प्रारब्ध अनुसार चल रहा है। उसे कोई इच्छा अथवा वासना नहीं है, वैसे इच्छा भी उत्पन्न नहीं होती, प्रारब्ध अनुसार वह वर्त्ताव कर रहा है। पारब्रह्म परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई भी चीज नहीं है। सबके अन्तःकरण में साक्षी स्वरूप है। सबके भीतर मैं आनन्द स्वरूप बैठा हूं।

(४१)

वीरता किसमें?*

वीर वह है, जो अपने कर्त्तव्यों का पालन करता रहे। किन्तु यह कायर होकर वन में कन्दमूल खाकर अपना जीवन व्यतीत किया तो भी वीरता कैसी। वीर वह, जो घर की भी करे तो हर की भी करे।

'रहत माया में फिरत उदास, कहत कबीर मैं ताका दास।'

कोई भी ऐसा व्यक्ति न होगा, जो चाहता होगा कि मैं आपदा में जाकर पथ भ्रष्ट होऊं। प्रत्येक अपने मार्ग पर आचरण करने की चेष्टा करता रहता है। नदी के तट पर पथिक अपना रास्ता लेकर जा रहा है तो नदी के मगरमच्छ उसे घसीट करके नदी के बीच में ले जाकर अपना शिकार बनाते हैं।

उसी प्रकार काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार ये पांच शत्रु हैं, जो मगरमच्छ की तरह मुंह फाड़ करके हम पर समय-समय पर आक्रमण करते रहते हैं। उनसे बचने का कौनसा उपाय है, उनकी औषधि सरल है। उनका गढ़ है मन। यदि वह मन वश में हो गया तो फिर वे शत्रु कुछ नहीं कर सकेंगे।

* २४ सितम्बर १९६६ को श्री किशनचन्द मयाराम की कोठी पर आगरे में किया गया प्रवचन।

परन्तु मन को वश में कैसे किया जा सकेगा? मन को वश में करने का उपाय है इन्द्रियों का दमन करना। इन्द्रियों को वश में करने से मन मुर्दा हो जाएगा।

समझो कि तुम्हारे चित्त में आता है कि अमुक व्यक्ति की हत्या कर दूं। तब तुम बिलकुल शान्त रहो। मन को आदेश दो कि भले उसे एक क्या परन्तु दस लगड़ियां लगाओ, किन्तु तुम शान्त रहो। फिर क्या होगा? मन का कोई वश न चल सकेगा।

हम सुन्दर नारी देखते हैं — मन में राग होने से उसे देखने की चेष्टा करते हैं। मन को कहो कि भले देखो, फिर भी देखो तत्पश्चात् तुम आंखें नीची करलो। परिणाम क्या होगा? मन मुर्दा हो जाएगा।

बाहर की राजधानी पर अधिकार सरलता से किया जा सकता है, किन्तु सच्चा शूरवीर तो वह है, जो भीतर की राजधानी पर अधिकार करे।

एक सन्त पुरुष गया किसी राजदरबार में। वह अपनी मस्ती में हंस रहा था और इधर-उधर देख रहा था। राजा ने मन्त्री को कहा कि 'इस सन्त को जाकर समझाओ। वह देखो कैसा अनुचित व्यवहार कर रहा है?

मन्त्री तत्काल दरबार से उठकर सन्त के पास गया और सन्त को कहने लगा कि सन्त स्वामी! यह क्या कर रहे हैं? सामने देख रहे हैं कि राजदरबार लगा हुआ है। राजा स्वयं दरबार में उपस्थित हैं। अधिकारीगण भी बैठे हैं। कुछ तो नम्रता अपनाइए।

सन्त ने मन्त्री को कहा कि 'अपने राजा से पूछ कर बताओ कि मन आपके वश में है अथवा आप मन के अधीन

हैं?' मन्त्री ने राजा के पास जाकर सम्पूर्ण बात की। राजा तत्काल घबरा गए। मन्त्री को कहा कि 'हम तो मन के दास हैं। जैसे मन नचा रहा है, वैसे नाच रहे हैं।' मन्त्री ने जाकर सन्त को यह सन्देश दिया।

सन्त ने सुनकर तत्काल चिल्लाकर कहा कि 'हां, यह क्या तुम्हारा राजा मेरे नौकर का भी नौकर है। लेकिन मैंने तो अपने मन को मारकर अपने अधीन कर लिया है। मन मेरा दास है।'

मन्त्री ने जाकर राजा से समस्त बात की। राजा बात समझ गया। वह सोचने लगा कि यह तो कोई सच्चा सन्त है। अतः तत्काल सिंहासन से उठकर, जाकर सन्त से क्षमा मांगी। सन्त ने राजा को दुःखी देखकर दया दृष्टि की और उसे आत्मिक बुद्धि देकर दोनों लोक सफल किए।



(५०)
लोभ न करो*

एक राजा डोली में सवार होकर युद्ध का सामान और सैनिक अपने साथ लेकर अन्य किसी बादशाह पर आक्रमण करने जा रहा था। मार्ग में एक वृक्ष के नीचे किसी सन्त को ईख चूसते हुए देखा। राजा ने मन्त्री को आज्ञा दी कि इस दरिद्र को एक मोहर दे दो कि बढ़िया-बढ़िया भोजन लेकर खाए। मन्त्री, सन्त को मोहर देने को था तो सन्त ने कहा कि "डोली में बैठे हुए दरिद्र को जाकर यह मोहर दीजिए।"

मन्त्री ने जाकर राजा को यह बात बताई। इस पर वह डोली से उतर कर सन्त को कहने लगा कि 'महाराज! मैं दरिद्र कैसे हूं? राजा के पास भी मोतियों की कोई कमी? आशीर्वाद दीजिए कि मैं युद्ध में विजयी बनू।'

सन्त ने राजा को कहा– 'हाथ में ठीकरी और कोयला लेकर आओ।' राजा लेकर आया। तब ठीकरी पर कुछ लिखकर सन्त ने राजा को कहा कि 'यह लो, आंचल में डाल दो।'

राजा ने प्रसन्नता के साथ वह ठीकरी ले ली। सन्त ने उसे कहा कि हे राजन्! बताओ कि दरिद्र आप अथवा मैं? ईख के छीतरों में तो कुछ रस था किन्तु इस ठीकरी में कौन सा रस है, जो तुमने आंचल फैलाया?'

* २३ अप्रेल १९६१ को श्रीकृष्ण गोशाला आगरे में किया गया प्रवचन।

राजा लज्जित होकर सन्त के चरणों में गिर पड़ा और कहा कि 'स्वामी, कुछ उपदेश दीजिये।'

सन्त कहने लगे कि 'पीछे लौटो। अपने राज्य पर संतोष कीजिए। दरिद्र मत बनो। इतना धन होते हुये भी हत्यायें करने जा रहे हो। चलो तो जगत् के पदार्थों का आपको अन्त दिखाऊं।

पहले उन्हें वहां ले गया, जहां टट्टियां थीं। राजा मुंह को कपड़ा देने लगा। तब सन्त ने उन्हें कहा– 'आप मुंह को कपड़ा क्यों देते हो और क्यों भागता है? विष्टा तो आपसे भागती है और कहती है कि कल बाजार में फल और मिठाइयां बनकर रखी थीं। रात को एक जीव के संग में मेरा यह बुरा हाल हुआ है। हे राजन् फलों और मिठाइयों का अन्त यह है।'

फिर उन्हें श्मशान में ले गए और कई हड्डियां और खोपड़ियां दिखाकर कहा– 'हे राजन्! इनमें से कुछ आपकी तरह राजा थे, जो हाथियों और घोड़ों पर चढ़कर बेपरवाह घूमा करते थे। उनके ये मुण्ड आकर देखिए कि कैसे धूल में पड़े हैं और कुत्ते और गीदड़ उनके ऊपर मूत्र छिड़क रहे हैं।'

राजा यह सब हाल अपनी आंखों से देखकर और सन्त के वचन सुन कर चकित हो गया और सन्त के चरणों में गिर पड़ा और सन्त से उपदेश लेकर पीछे लौटकर अपने राज्य में रहकर बिदेह मुक्त हुआ।

कबीर कौड़ी कौड़ी जोड़के, जोड़े लख करोड़।
चलती बार न कुछ मिलिया, लए लंगोटी तोर॥

झूठ मां कहा करे, जग सपने जिउजान।
इनमें कछू तेरो नहीं, नानक कहियो बखान॥

(५१)

पुरुषार्थ की आवश्यकता*

"वह प्रभु दूर नहीं है, प्रभु तू है।" बस, बात यह है जो बार-बार करके व्याख्या करनी पड़ती है, जैसे जिस मंजिल की ओर मनुष्य को जाना होता है, वहां उसे पहुंच कर, फिर कहीं जाना नहीं पड़ता। वैसे जिसने आत्मज्ञान, आत्म ध्यान और आत्म आनन्द ज्ञान की मंजिल को पूरा करके, उस ध्यान और आनन्द में स्वयं को स्थित किया है और पूर्ण रूप से वहां पहुंच चुका है, उसे फिर किसी अन्य ओर जाना नहीं होता। उसका उद्देश्य पूरा हुआ। वह वहां पहुंच कर पूर्ण नित्य अखण्ड आनन्द में स्थित रहकर आनन्द प्राप्त करके, अपना मनुष्य जन्म सफल कर चुका और जीवित होते ही जीवन मुक्त होकर, विदेह मुक्ति को प्राप्त करेगा। सदैव के लिए जन्म-मृत्यु के दुःखों के चक्र से छूट करके अखण्ड ब्रह्म आनन्द में जाकर लीन होगा। जैसे जिस मनुष्य को बल और साहस है तथा पैसे की सामर्थ्य है, यह हवाई जहाज से यात्रा करके शीघ्र जाकर मंजिल पर पहुंचेगा। किन्तु जिसको धन आदि का बल अथवा साहस नहीं है, वह रेल्वे मार्ग से स्टेशनों से होता हुआ, धीरे-धीरे बहुत समय के पश्चात् वहां पहुंचेगा। वैसे जिसको बल, बुद्धि, साहस है,

* ३ दिसम्बर १९६१ को जेतपुर में किया गया प्रवचन।

वह शीघ्र ही ब्रह्मानन्द में जाकर लीन होगा और जिसमें बल, बुद्धि आदि कम है, वह धीरे-धीरे उपासना आदि शुभ कार्य करते हुए, बहुत समय पश्चात् वहां पहुंचेगा। किसी को रोक टोक नहीं है। जितना जिसमें साहस हो, चाहे आज ही ब्रह्मानन्द मोक्ष को प्राप्त करे, चाहे हजार जन्म ले, उसके पश्चात् जन्म-मृत्यु से छूटकर मोक्ष पद प्राप्त करे। वह जैसा जिसका साहस होगा, वह उस मंजिल को प्राप्त करेगा। दूसरे से तो प्रत्येक प्यार कर सकता है, परन्तु जब कोई अपने आप से प्रेम करे, उस ज्योति स्वरूप में जलकर आनन्द में लीन हो जाय। जैसे पतंगा शमा पर मोहित होकर जलकर खाक हो जाता है, वैसे अपनी आत्म ज्योति में जलकर खाक है। ऐसे को मेरा नमस्कार है। 'न' अक्षर कोश से निकल दो कि मोक्ष का यह काम कठिन है आदि। पुरुषार्थ करने से सभी काम पूर्ण हो जाएगें।

(५२)

आनन्द प्राप्ति हेतु कौनसी आवश्यकता*

ये संसार की चीजें आनन्द रूप नहीं हैं। ये जो भी भोग हैं, वे दु:खों के कारण हैं। जिनसे दु:ख मिले, उनकी जड़ नाश करनी चाहिये। उन्हें विचारना चाहिये कि दु:ख किस कारण से उत्पन्न हुआ और उसके लिए अज्ञान को नाश करके सदैव सुख रूप आनन्द में रहना चाहिये। संसार स्वप्न की भांति है। गहरी नींद में सुषुप्ति में जो प्रतिदिन जाते हैं वह किसके लिए? इसलिए कि वहां आनन्द मिलता है। जब सुषुप्ति वाली अवस्था जाग्रत में उत्पन्न हो, तब कहा जायेगा कि बराबर तप, दान, पुण्य करना आदि ठीक है और निष्काम शुभ कर्म करते रहना चाहिये। उससे हृदय शुद्ध व पवित्र होता है। दान आदि शुभ कर्म करने से स्वर्ग आदि लोकों के सुख मिलते हैं, परन्तु अन्धकार दूर नहीं होता। उसका एक ही उपाय है आत्मज्ञान। प्रकाश के सिवाय अन्धकार नहीं जायेगा। भले ही छोटा बालक अथवा कोई भी दीपक जलाए तो अन्धकार दूर हो जायेगा। जब प्रकाश हुआ तो फिर क्या अन्धकार रहेगा? कदापि नहीं रहेगा।

प्रत्येक की दौड़ किस ओर है? आनन्द की ओर। चाहे सब सुख मिलें, तो भी किसी से पूछोगे कि तुझे आनन्द चाहिए

* २२ मार्च १९६२ को बांटवा में किया गया प्रवचन।

तो क्या कहेगा कि मुझे आनन्द नहीं चाहिये! नहीं। वह कहेगा कि मुझे आनन्द चाहिये। धनवान भले ही अरबपति हो, उससे यदि पूछोगे, तो क्या कहेगा कि मुझे आनन्द नहीं चाहिये। करोड़पती भी सुखी नहीं है। सुखी वह है, जो दो चार रुपये कमाकर, सदैव विश्राम और आनन्द में रहता है। तुम शरीर से कुछ ऊपर होकर देखो। तुम्हारा हृदय जब शुद्ध होगा, तब तुम्हें सब कुछ प्राप्त होगा।

संसार सपना है, सब नाशवन्त है, ऐसा कहने से कल्याण नहीं होगा; परन्तु जो उसे बराबर जानता और समझता है, वही आनन्द को प्राप्त करता है। 'तब क्या स्वामीजी! संसार को असत् जानकर छोड़ देना चाहिये? क्या काम काज आदि व्यवहार न किया जाय।' भले किया जाय, कर्म करते हुए भी अकर्त्ता रहना चाहिये। मन में कोई भी फल की इच्छा आदि अभिमान न करना चाहिये। अकर्त्ता, अभोक्ता होकर रहना चाहिये। पहले भी राजा महाराजा हो चुके हैं, जो राज्य कारोबार आदि सब काम संभालते हुए भी, अपने आनन्द स्वरूप में स्थित रहकर मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। आत्मज्ञानी कार्य करते हुए भी कुछ नहीं करते, वे सदैव आनन्द स्वरूप में ही स्थित रहते हैं। यह जिन्होंने जाना, वही सत्य है। उससे ऊपर और कोई भी पद नहीं है। वह भगवान की बेटी से विवाह करके, भगवान को अपना ससुर बनाकर, सदैव उसकी बेटी से आनन्द का मजा लेकर सुखी हो।

(५३)

लाभ कब मिलेगा?*

नियम में बड़ी शक्ति है। अमृत वेला (ऊषा काल) को संत महात्माओं ने ब्रह्म मुहूर्त कहा है। यह समय बड़े भाग्य-शाली को प्राप्त होता है। धन्य भाग हैं आप सत्संगियों के, जो नित्य प्रति नियमपूर्वक कई बर्षों से अमृत काल के समय सत्संग करते आ रहे हो, परन्तु आप जो सत्संग में इतनी सारी कथाएं सुन रहे हो, वह किसके लिए? रामायण, गीता, वेद, शास्त्र सुनने के लिए रचे गये हैं, केवल सुनते रहना और सुनाते रहना और उन पर यदि अमल (आचरण) नहीं किया गया तो कोई लाभ नहीं।

इलम कहते नहीं, अलफाज के पहचान को।
इलम कहते हैं, जो बताए जिन्दगी के निशान को॥
इलम अगर पढ़ लिया, आलम कहलाया तो क्या हुआ।
जब तक उस पर अमल करना न आया तो क्या हुआ॥

अमल आचरण) के सिवाय इलम (विद्या) लूला लंगड़ा व बेकार है। विद्या बिना अनुकरण के इस प्रकार है, जैसे केवट के बिना नाव। एक महात्मा ने परीक्षा लेने हेतु दो प्रेमियों को मूंग के कुछ दाने देकर कहा कि भाई, यह हमारी अमानत अपने पास रख दो। एक दो वर्षों के बाद जब भी हम आये, तब आपसे हम अपनी अमानत वापस लेंगे। इन दो प्रेमियों में से एक प्रेमी अन्ध-श्रद्धालु था। उसने एक छोटी

* २४ अप्रेल १९६१ को ताजमहल, आगरा में किया गया प्रवचन।

डिबिया में सन्त द्वारा दिये गये दाने डालकर उसे बन्द कर उसके ऊपर रूमाल लपेट कर, पालने में डालकर उसे रोज झुलाता और धूप बत्ती करता रहा।

परन्तु दूसरे ने उन्हीं मूंग के दानों को अपने खेत में जाकर बो दिया। इस तरह से साल दो साल में दो तीन बोरियां मूंग की हो गई। दो साल बाद जब वे सन्त वापस आये, तो उन्हीं में से जो पहले वाला अन्ध-श्रद्धालु था, वह अपने घर से मूंग की डिबिया ले आया और हर्ष के साथ संत को कहने लगा कि स्वामी जी ! आपकी अमानत को अपने प्राणों की तरह संभालता रहा हूं और पालने में झुलाता रहा हूं। संत ने कहा 'बेटा, दिखाओ तो सही मेरी अमानत का क्या हाल है?' उस अन्ध-श्रद्धालु ने रूमाल आदि खोलने के बाद जब उस डिबिया का ढक्कन खोलकर देखा तो उसे अफसोस हुआ कि मूंग तो घुन (कीड़े) खा गये। तब संत ने कहा कि यह क्या हुआ? यही हाल हमारी अमानत का तुमने किया।

इसके बाद जब दूसरे प्रेमी से संत ने कहा, 'भाई तुम भी हमारी अमानत ले आओ।' तब वह प्रेमी सत्य वचन कह कर घर गया और ऊंट पर मूंग की बोरियां लाकर, संत के सामने रखकर कहने लगा कि स्वामीजी! यह रही आपकी अमानत। संत अमानत देखकर बहुत खुश हुआ और उसे आशीर्वाद देकर कहने लगा कि 'बेटा, कहे हुए वचन की कमाई न की गई तो वचन किस काम का।' मिश्री मिश्री हजार बार कहने से मुख मीठा होगा क्या? इस लिए इलम (विद्या) वह, जिस पर आचरण किया जाय। नाना प्रकार के भोजन आगे रखे हों, परन्तु खाया न जाय तो तृप्ति कैसे होगी?

(५४)

भगवान की प्रसन्नता किन पर ?*

स्वामी जी से किसी जिज्ञासु ने प्रश्न किया कि 'स्वामी जी, भगवान कौन से पुरुषों पर प्रसन्न होते हैं?' स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'भक्त, दाता, दीन और शूरवीर' इन चार प्रकार के पुरुषों पर भगवान प्रसन्न होते हैं।

(१) **भक्त–** ऐसा हो, जो बालक अवस्था से लेकर जवानी और बुढ़ापे तक समस्त जीवन परमेश्वर की भक्ति में व्यतीत करे।

(२) **दाता–** ऐसा होना चाहिये, जिसके निर्धन होते हुए भी उसकी धर्म दान में प्रीति हो।

(३) **दीन–** ऐसा हो, जो बड़ा धनी और कुलीन होते हुए भी नम्रता धारण करे और अपने को सबसे कम समझे।

(४) **शूरवीर–** ऐसा हो, जो धर्म और देश सेवा के लिए अपना सर बलिदान करे और इन्द्रिय-जीत हो।

उपर्युक्त चारों प्रकार के मनुष्यों पर भगवान प्रसन्न होता है।

* २५ अप्रेल १९६१ को श्रीकृष्ण गौशाला आगरे में किया गया प्रवचन।

(५५)

शान्ति कब मिलेगी?*

एक राजकुमार बन में गया तो बहां किसी महात्मा को उसने अत्यन्त शान्त देखा। तब उससे पूछा, "स्वामी जी! मैं ऐसी शान्ति कैसे प्राप्त करूं?"

महात्मा ने कहा- "तुम तो राजा के पुत्र हो, किन्तु मेरा सम्बन्ध है राजाओं के राजा से। यदि उसका दर्शन चाहो तो पहले बताओ कि स्वयं कौन हो? फिर मैं महाराजा को जाकर कहूंगा कि तुम्हें दर्शन दें।"

राजकुमार ने अपना विजिटिंग कार्ड नाम व पते सहित निकाल कर उनको दिया।

महात्मा ने कहा- "यह कार्ड तो कागज का टुकड़ा है। तुम बताओ कि वास्तव में तुम कौन हो?"

मन्त्री से मन्त्रणा करके राजकुमार ने पहले कहा कि "मैं मन हूं। फिर कहा कि मैं बुद्धि हूं, मैं प्राण हूं।"

महात्मा ने कहा- "मन और बुद्धि मेरे हैं। इसका अर्थ है कि तुम कोई अन्य वस्तु हो।"

राजकुमार यह सुनकर विचार में पड़ गया। धीरे धीरे उसे ज्ञात होने लगा कि "मैं आत्मा हूं।" फिर तो अधिक

* २६ अप्रैल १९६१ को कृष्ण गऊशाला आगरे में किया गया प्रवचन।

प्रश्न करने की उसे आवश्यकता ही न रही और आत्मा में परमात्मा का दर्शन करके महा शान्ति प्राप्त कर ली।

मन— मन एक शक्ति है। मन के अतिरिक्त मनुष्य कैसा? मन को किसी काम में डाला जाएगा, तभी वह काम सफल होगा। भावना के सिवाय कार्य अधूरा रहता है। मन बुद्धि के साथ जुड़ा हो। बुद्धि भी भले बुरे की परीक्षा करने के लिए आत्मा से ज्योति प्राप्त करती है।

शरीर रथ, मन घोड़ा, बुद्धि लगाम और आत्मा सारथी है। पापी और पुण्य आत्मा में केवल यह भेद है, जो पापी का मन इन्द्रियों के स्वादों और बाह्य विषयों में दौड़ कर जाता है, परन्तु ज्ञानी अपने मन रूप घोड़े को बुद्धि रूप लगाम से पकड़ कर चलता है और उसकी बुद्धि आत्मा से प्रकाश प्राप्त करती है। ऋषि मुनि मन पर संयम रखकर, अपने में लीन होकर अपने को आत्मा का स्वरूप करके देखते हैं।

(५६)

मन की मलीनता को शुद्ध करो*

स्वतन्त्रता– स्वतन्त्रता का अर्थ स्वच्छन्दता नहीं है। हमारा भारतवर्ष १९४७ ई. में तो स्वतन्त्र हुआ, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हमें अब पूर्ण अधिकार मिला है कि जैसे चाहें, वैसे चलें। सच्ची स्वतन्त्रता तो यह है कि हम मन पर संयम रखें। ऐसा नहीं कि मन के वश में रहें और जैसे वह कहे, वह बिना विचार के करते रहें। फिर हम में मानवता कैसे रही? यदि हमारा मन हमारे वश में न रहा तो फिर हमें मनुष्य कहलाने का क्या अधिकार है? हमारा सौभाग्य है कि हमने पूर्व जन्म में कुछ ऐसे उत्तम कार्य किये हैं कि हमें यह मानव शरीर प्राप्त हुआ है।

चौरासी लाख योनियों में मानव योनि उत्तम में उत्तम है। देवी देवता भी इस योनि के लिए इच्छुक हैं।

कवि स्वामी साहब ने सिन्धी में श्लोक लिखे हैं, जिनका अर्थ है– 'मानव देह उत्तम है और किसी पूर्व पुण्य से प्राप्त की है, उसका रहस्य अपने मन में रखना। एक एक श्वास अमूल्य है, कल्पित काम छोड़कर, जागकर नाम जपना।'

* २७ अप्रेल १९६१ को श्रीकृष्ण गौशाला आगरे में किया गया प्रवचन।

किन्तु हम उसकी कद्र नहीं करते।

किसी विरले को ही मानव देह की कद्र है। यदि हमने अभी भी आंख न खोली तो फिर कौनसी योनि में हम अपना उद्धार कर सकेंगे।

आज़ादी और गुलामी– तुम अपने कमरे में रहते हो, भीतर बाहर आ जा सकते हो, यह आजादी है। किन्तु जब दूसरों के अधीन रहते हो और बाहर से कोई व्यक्ति तुम्हारे कमरे को ताला लगाकर चाबी अपने हाथ में रखता है और जब उसकी इच्छा हो, तब वह ताला खोले, तुम्हें बाहर निकाल सकता है, तब वह है जेल खाना। तुम जब भीतर हो परन्तु भीतर से वही ताला लगाकर चाबी अपने पास रखते हो, तुम अपनी इच्छानुसार बाहर भीतर आ जा सकते हो, तब है सच्ची आजादी। उसी प्रकार तुम्हारा मन पर संयम है और सोच समझकर कुछ करते हो तो वह आजादी है, परन्तु यदि तुम मन के दास हो और उसके कहने के अनुसार चलते हो तो गुलाम हो, मन के वश में हो तो फिर आजादी किस की? फिर तो गुलामी हुई।

विदेश में देखो तो कितनी आजादी है। उठने बैठने, खाने, फिरने, खर्चने में हर प्रकार की स्वतन्त्रता। बेटी-बाप, बेटा-माता सभी कमा रहे हैं। पता नहीं कि कब आते हैं, कहां जाते हैं। तात्पर्य यह है कि सब आजाद हैं। प्रत्येक अपने स्वार्थ पर चल रहा है। ऐसी आजादी के कारण कितना नाश हो रहा है। चरित्र नष्ट हो रहा है। लोग नाना प्रकार के रोगों के शिकार हो रहे हैं।

टी. बी., कैंसर, जोड़ों के दर्द ये रोग पहले भारत में कहां थे? विदेशों से ही बीमारियां भारत वर्ष को उपहार रूप

में मिली हैं। सिगरेट, चाय, शराब, लूट व हत्यायें आजकल साधारण चीजें समझी जाती हैं, लेकिन उन्होंने जितने अनर्थ किये हैं, वे किसी से छुपे हुए नहीं हैं। देशों के देश नष्ट हो गए हैं। सोच विचार से काम नहीं लेंगे तो यह आजादी दुःखदायी होगी।

रजब एक सांस का, तीन लोक नहीं मोल।
वृथा क्यों गंवाइये, ऐसा सांस अमोल।।

अतः हमें चाहिये कि सदैव मन पर संयम रखकर संसार में चलें किन्तु संसार में लिप्त न हों। मानव द्वारा मानव की सेवा ही सच्चा धर्म है, वही सच्ची आजादी है।



(५७)

क्रियाएं कौन करता है?*

नाम रूप सब मिथ्या है, शेष अस्तित्व है, वह किसका है! वह अस्तित्व एक तुम्हारा ही सच्चा स्वरूप है। तुम ही सदैव स्थित, अखण्ड, परिपूर्ण, शुद्ध, पवित्र, सच्चिदानन्द स्वरूप हो; उसके ही ज्ञान, उसके ध्यान, उसके आनन्द में ही सदैव स्थिर रहो, फिर नित्य आराम ही आराम रहेगा।

अब तुमसे कोई पूछे कि तुम्हारा नाम क्या है, कहोगे कि मेरा अमुक नाम है। चाहे गाता तुम्हारे सर पर रख कर कोई तुमसे पूछे तो भी कहोगे कि मै अमुक हूं। वैसे आत्मा के अभ्यास द्वारा जब स्वयं के दृढ़ निश्चय से सच्चिदानन्द परमात्मा समझकर कहोगे कि मैं परमात्मा स्वरूप सच्चिदानन्द रूप हूं और यही मेरी जान है, तब तुम्हारा मानव जन्म सफल होगा। जैसे आत्मा चिदाकाश रूप है, वैसे आत्मा चेतन सर्वव्यापक भी है। सुषुप्ति अथवा गहरी नींद में कोई इच्छाएं, पदार्थ, सुख, दुःख आदि हैं क्या? नहीं, वहां तो केवल शान्ति, आनन्द ही आनन्द है, आनन्द के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं। इसी प्रकार जाग्रत में दुःख सुख आदि कोई भी कल्पना नहीं है। केवल मनुष्य ख्याल करके अपने को दुःखी सुखी आदि कल्पना करके दुःखी हो रहा है, नहीं तो

* १८ जुलाई १९६२ को नैनीताल में किया गया प्रवचन।

सच्चिदानन्द स्वरूप सदैव सब अवस्थाओं में एक रस है, उसमें रती मात्र भी कलंक नहीं है।

तुम कौन हो! तुम शरीर नहीं हो। तुम कहते हो कि मैं लिख रहा हूं, लेकिन तुम लिख नहीं रहे हो, परन्तु हाथ लिखते हैं। फिर कहते हो कि मैं सुनता हूं, चलता हूं, उठता हूं, काम कर रहा हूं, सोता हूं इत्यादि। लेकिन कान सुनते हैं, टांगे चलती हैं, शरीर उठता है, हाथ काम कर रहे हैं, किन्तु तुम तो कुछ भी नहीं करते हो। ये सभी क्रियाकर्म शरीर तथा इन्द्रियां कर रही हैं और न तुम! तो उन सभी इन्द्रियों और शरीर को जानने वाला, उनसे न्यारा, साक्षी स्वरूप, सत् चित्त आनन्द रूप हो। आत्मा में किसी प्रकार की क्रियाएं आदि नहीं और अभोक्ता है। आत्मा का जन्म ही नहीं तो शरीर तथा इन्द्रियां आदि और उनका भोक्ता आदि धर्म कहां से आये। मैं न कुछ करता हूं, न चलता हूं, न खाता हूं, न पढ़ता हूं, न सुनता हूं, न दुःखी सुखी होता हूं। न मुझमें मोह, न अहंकार और न लोभ है। मैं असंग, स्वतन्त्र, शान्त स्वरूप, परम परमात्मा भगवत स्वरूप हूं। अशान्ति, दुःख सुख आदि मेरे धर्म में नहीं हैं अर्थात् वे मुझ में हैं ही नहीं।

ध्यान का अर्थ है आत्म चिन्तन, उसका स्मरण सदैव, हर हाल में, हर चाल में, हर समय में स्थित रखना। गुण ही गुणों में वर्तते हैं। मैं तो सब गुणों से भिन्न असंग हूं। यथा जबान का गुण है रस लेना, कानों का गुण हैं सुनना अर्थात् शब्द, त्वचा का गुण है स्पर्श अथवा छूना, नेत्रों का गुण है देखना अर्थात् रूप देखना, नाक का गुण है गंध अर्थात् सुगन्ध और दुर्गन्ध को मालूम करना। कर्म इन्द्रियां और

ज्ञान इन्द्रियां ही हैं, जो अपने विभिन्न कार्यों में वर्तती हैं। मैं तो उन सभी को जानता हूं। मैं ज्ञान स्वरूप, मैं उन सबसे न्यारा और असंग हूं। मेरा इन गुणों, कर्मों और धर्मों से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। मैं तो संसार रूप शरीर, माया, नाम और रूप सबको जानता हूं। यह शरीर तथा संसार उत्पन्न ही नहीं हैं। जब पैदा नहीं है तब उसका देखना और होना कहां रहा? मैं ही एक चेतन, आकाश रूप, सच्चिदानन्द, शुद्ध, पवित्र, अखण्ड, अजर, अमर, अंगों से रहित, परिपूर्ण, व्यापक, निर्विकार, असंग, न्यारा, नाम रूप से रहित स्वयं प्रकाश स्वरूप, सुख का सागर, अमृत की धारा, परम आनन्द, परम शान्त स्वरूप हूं। सबमें अस्तित्व सबमें ज्ञान मेरा है, सबमें आनन्द खुशी, प्रेम का अस्तित्व मेरा है. अन्य सब कुछ मैं ही हुआ। संसार मुझ में लेश मात्र भी नहीं है। सबमें ही हूं। सबमें अस्तित्व, ज्ञान और आनन्द एक है। वही आनन्द स्वरूप ब्रह्म मैं हूं।

है एक सच्चिदानन्द, जो नाम रूप की पोशाक पहन कर बैठा है। जैसे शरीर कपड़ों से भिन्न है, वैसे नाम रूप वाली भेष पहनते हुए भी आत्मा उससे भिन्न अर्थात् न्यारा है। हीरे को बचाने का यत्न करो। अब बहुत लीलाएं हुईं। मन को समझा कर वश में करो।



(५८)

बालक सुधरे तो भारत सुधरा*

विद्यार्थियों को चाहिये कि अपने चरित्र पर ध्यान दें। धन गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ कुछ गया, किन्तु चरित्र गया तो सब कुछ गया। अतः चरित्र ही है, जो मनुष्य को बनाता है।

सिनेमाओं के कारण चरित्र बिगड़ता है। सिनेमाएं बन्द हो जायं तो राम राज्य हो जाय। प्राचीन काल में बचपन से ही धार्मिक शिक्षाएं दी जाती थीं। ऐसे भी शूरवीर थे, जो शेरों से लड़ाइयां करते थे। रानी मदालसा जैसी माताएं बालकों को त्याग की लोरी देती थीं। अब उसके विरुद्ध छोटे बच्चों को डराया जाता है कि "बकनी आती है, तुझे हाऊ न उठा ले जाय।"

माता पिता ही हैं, जो बालकों का सुधार करते हैं। वे मानों एक प्रकार के माली हैं। इन दोनों से माता का प्रभाव अधिक होता है। गर्भ के भीतर ही बालक पर माता के खाने पीने तथा विचारों का प्रभाव पड़ता है, इस लिये बचपन से ही उन्हें सत्य मार्ग पर चलने की शिक्षा देनी चाहिये। अच्छी अच्छी तथा स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य के विषय पर उन्हें पुस्तकें पढ़ाई जायं। उन्हें कुश्ती सिखानी चाहिये। उनके खानपान पर ध्यान देना चाहिये, जिससे वे स्वस्थ रहें।

* २४ अप्रेल १९६१ में श्रीकृष्ण गऊशाला आगरे में किया गया प्रवचन।

उन्हें व्यर्थ के जेब खर्च देकर चटोरा नहीं बनाना चाहिये। उनके चरित्र पर अत्यन्त अधिक ध्यान देना चाहिये। देखना चाहिये कि वे व्यर्थ समय तो नहीं गंवाते। कोई बुरी आदत तो धारण नहीं करते। धार्मिक शिक्षा देने से चरित्र का निर्माण होता है। उनके वातावरण पर भी ध्यान देना चाहिये। पर देखना चाहिये कि जैसे कोई भी गंदा शब्द मुख से न निकाले। सबसे मधुर बोलना, बड़ों का आदर करना, आज्ञाकारी बनना, किसी को भी न सताना, झूठ न बोलना, चुगली न मारना, वैर-ईर्ष्या न रखना, सदाचारी होना सीखें, दैवी सम्पदा के गुण उनमें डालने चाहिये। स्मरण रखिये कि बालक सुधरे तो भारत सुधरा।

दूसरों के दोष न जांचो:– सारा जग सुधरे लेकिन यदि हम न सुधरे तो कुछ भी न हुआ। अतः सर्वदा अपना खयाल रखना चाहिये। सदैव प्रातःकाल को नींद से उठने के समय परिपूर्ण परमात्मा के समक्ष प्रार्थना करनी चाहिये कि हे दयालु स्वामी! मुझ पर कृपा कीजिये, जैसे मैं अपने दोष देखूं और दूसरों की बुराइयों पर दृष्टि न पड़े। सदैव गुण ग्राहक बनूं।

राम जैसे पुत्र बनो और न रावण जैसे। प्रत्येक अपने को ठीक बनाए। ऐसा न समझना चाहिये कि मैं अकेला हूं और मैं अकेला क्या कर सकता हूं। स्वामी विवेकानन्द अकेले थे। स्वामी रामतीर्थ अकेले थे। गांधी महाराज अकेले थे। भक्त कंवरराम अकेले थे। फिर भी कैसे न आज तक उनका नाम अजर अमर है? आज तक उनकी बरसियां मनाई जाती हैं। एक अच्छा आलू बोया जाएगा तो उससे वैसे ही सैकड़ों मन पैदा हो जाएंगे। एक अच्छे आम की गुठली बोने से हजारों अच्छे आमों के बृक्ष पैदा किये जा सकते हैं।

अहिंसा परमो धर्मः– यदि अहिंसा का पालन करें तो एक भी जेलखाना न रहे। फोजदारी कोर्टें ही बन्द हो जायं। नये नये कानून नहीं बनते।

सत्य का पालनः– यदि ब्रह्मचर्य का पालन करें तो हस्पतालें बंद हो जातीं। फिर कोई बीमार न होता। डाक्टरों के अधीन ही नहीं बनते। कई वर्ष जो विद्यार्थी अनुत्तीर्ण ही नहीं होते, उनका बल बुद्धि तेज हीन होने के कारण मस्तिष्क काम करने से थक जाता है। परिणाम यह होता है कि वे कई वर्ष लगातार परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण होते रहते हैं और बार बार चढ़ाइयां करते रहते हैं।

मन को बुद्धि द्वारा ठीक रखोः– बुद्धि द्वारा देखो कि मन में कौन से दोष प्रवेश कर रहे हैं। जैसे बीमार का डाक्टर आपरेशन करते हैं। वैसे बुद्धि द्वारा मन का आपरेशन करके मन को ठीक करो। मन में जो मैल भरा पड़ा है, इतनी सारी जो गंदगियां भीतर भरी पड़ी हैं, उन्हें बाहर निकालने का यत्न करो।

मन ही सुख और मन ही दुःख देता है। किसी वस्तु में सुख नहीं, यदि होता तो फिर ज्वर में हलुवा क्यों नहीं भाता है? ज्वर में जीभ का सवाद ही बदल जाता है और स्वादिष्ट वस्तु भी कड़वी लगती है। चेतन आत्मा की शक्ति द्वारा बुद्धि का विकास होता है। दूसरों के दोष न देखकर, एक एक करके स्वयं से दोष निकाल करके, अपने को दोष रहित बनाओ। जब तक मन में दोष होंगे, तब तक सुख की प्राप्ति कहां! कई वर्ष भी तुम मालाएं फिराओ, जाप जपो, रिद्धियां सिद्धियां इकट्ठी करें, किन्तु जब तक मन मलीन होगा, तब तक आनन्द किसका?

मन मैले सब कुछ मैला होय, तन धोए मन अच्छा न होय।

(५१)

सत्संग महिमा *

संसार में जो वस्तुएं देख रहे हैं, वे क्या हैं? वे सभी पानी की लहरें हैं, उनको समझना है। यह कहां से मालूम होगा? यह सत्संग से। हम यदि एक भी पंक्ति सत्संग की सुनें, समझें और उस पर आचरण करें तो हमारे बेड़े पार हो जायं।

गुरु वसिष्ट जी ने उत्तर रामायण में कहा है कि "यह सत्संग महा धर्म है। जिसने धर्म का रूप न देखा हो तो वह सत्संग देखे।" सत्संग ऐसी चीज है, जो वाल्मीकि जैसा पापी और हत्यारा सत्संग से तर गया और बड़ा ऋषि गिना जाता है। उन्होंने रामायण नामक जो काव्य लिखा है, वह महाभारत काव्य, जो संस्कृत कविता में लिखा हुआ है, उससे उत्तम है, महाभारत को पांचवां वेद कहा जाता है। उसको पढ़कर देखने से जानोगे कि वाल्मीकि रामायण की कविता उससे अधिक अच्छी है।

रामायण भी कई प्रकार के हैं। महाराज भोज के पास ११०० पंडित थे, उनमें से कालीदास बड़ा विद्वान था। वह

* २४ मार्च १९६६ को जयपुर में श्री खटणमल अमर-डिनेमल के घर में किया गया प्रवचन।

राजाओं की प्रशंसा की पुस्तकें लिख कर, उनसे पैसे लेते थे। एक भक्त ने उसे कहा कि व्यर्थ की पुस्तकें लिखकर पैसे लूट रहे हो। इससे तो सत्संग की पुस्तकें लिखो, जिसमें भगवान की स्तुति हो। इस पर कालीदास ने रघुवंश काव्य लिखा, जो एक रामायण है, अन्य रामायण हैं अदीभूत रामायण, हनुमान शटक रामायण इत्यादि।

एक गांधी सेठ था। गांधी अर्थात् पंसारी। जैसे मोहनदास कर्मचन्द गांधी के पूर्वज पंसारी थे, इसलिए उनका वंश गांधी कहलाता है। इस सेठ की आदत थी कि वह प्रतिदिन प्रातः सायं नियम से कथा सुनने जाते थे। उसने अपने पुत्र को कहा–"मुझमें तो पिताजी ने कथा सुनने की आदत डाली है। यदि नहीं जाता तो ऐसा नहीं कर सकता, जैसे अन्य आदतें छोड़नी कठिन लगती हैं। परन्तु तू कभी कथा सुनने नहीं जाना, मेरा ही बहुत समय ऐसे ही जाता है। लड़के ने उत्तर दिया "सत् वचन।"

एक दिन संयोग से सेठ से उसके पुत्र को दुकान की आवश्यक बात पूछनी थी, अतः दरबार में गया, जहां कथा होती थी। वहां उसके कान पर आवाज पड़ी कि "देवता की छाया नहीं पड़ती।" ये शब्द सुनने के पश्चात् हटकर बाहर खड़ा हो गया और दिल में कहा कि मुझे तो कथा सुननी नहीं है, जो पिताजी का आदेश है। लेकिन वे शब्द उसके दिल पर अंकित हो गये। फिर भगवान को पुकारा कि पिताजी को बाहर भेजो। उसका पिता भी थूकने के लिए वहां बाहर आया। उसे उसके पुत्र ने संकेत दिया, जो आया और उससे वह बात पूछ कर वापस गया। चार पांच वर्ष के पश्चात् सेठ का स्वर्गवास हो गया और उसका पुत्र बुरे संग में फंसकर सब बुरी आदतें सीख गया।

रामायण में लिखा हुआ है कि बुरे संग से बचो, क्योंकि रानी कैकेयी नेक स्त्री थी, किन्तु मन्थरा दासी के बुरे संग में खराब होकर राम को बनवास भेज दिया।

सेठ का पुत्र भी बुरे संग में आकर सब सम्पति गंवा बैठा, फिर चोरी करने लगा। एक दिन राजा के महल से साढ़े तीन लाख रुपये के जवाहर और स्वर्ण की मुद्राएं चोरी करके एक पुरानी जगह में खड्डा खोद कर गाड़ दिये। राजा ने इसके लिये घोषणा कि जो चोर और चोरी हुए माल की सूचना देगा, उसे पच्चास हजार रुपये पुरस्कार दिया जाएगा।

यह पुरस्कार किसी ने भी नहीं लिया। किन्तु एक धूर्त स्त्री ने लेकर रखा और राजा को कहा कि मुझे एक हाथी, एक त्रिशूल और वस्त्र दीजिये। वे लेकर, देवी का रूप धारण करके, हाथी पर चढ़कर शहर में घूमने लगी। प्रति-दिन १५-२० घरों में जाकर जांच करती थी।

उधर सेठ का पुत्र चोरी किये गये गाड़े हुए धन की खबर लेता रहता था। एक दिन वह देवी हाथी पर सवार होकर सेठ के पुत्र के घर में आई। सेठ के पुत्र ने जो सत्संग में एक वचन सुना था कि देवताओं की परिछाई नहीं पड़ती, उस वचन के याद पड़ने पर उसने देवी को जांचा। देखा कि उसकी परछाई पड़ रही है। उसने दिल में सोचा कि यह देवी नहीं है किन्तु यह झूठी है। अतः तलवार निकाल कर नकली देवी को बालों से पकड़कर मारने के लिए तैयार हुआ। इस पर देवी ने उसे कहा कि "मुझे मारो नहीं, मैं धूर्त स्त्री हूं।" उसने उत्तर में कहा, "तुमने भी कइयों को धोखा दिया है, मैं तुझे नहीं बख्शूंगा।" सो तलवार से उसे काट दिया और हाथी को डंडे लगाकर दौड़ा कर निकाल दिया।

तात्पर्य यह है कि एक वचन से उसे तीन लाभ हुए। एक तो उसकी लज्जा शर्म बची और फांसी से छूटा। दूसरा उसका धन बचा और तीसरा उसकी भावना शुद्ध हुई। उसने प्रण किया कि भविष्य में कथा सुनूंगा, सत्य बोलूंगा तथा सच की कमाई करके खाऊंगा, अब उसने समझा, "तुझे क्या गैर से मतलब, तू अपनी तोड़ निभाता जा।"

उसने निश्चय किया कि गड़ा हुआ धन वापस जाकर उसे दूंगा, जिसका चोरी किया है। जिसे बुद्धि से दृढ़ किया जाता है, वह है निश्चय। सेठ का पुत्र वह धन लेकर राजा के पास गया। रास्ते में द्वारपाल ने उसे रोका किन्तु उन्हें धन दिखाकर बताया कि राजा को देने जाता हूं। धन लेकर राजा के सामने जाकर रखा और पूर्ण बात उसे सुनाई। राजा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

फिर मन्त्री को आदेश दिया कि इसे एक अच्छा बंगला रहने के लिए दो और इसके लिए एक नौकर भी रख दो। इसके अतिरिक्त एक विद्वान पंडित भी रखकर दो, जो इसे प्रतिदिन कथा सुनाए। जैसे तुलसी का पौधा सारे बगीचे के समान है, इसी प्रकार उसके सभी कार्य सिद्ध हुए। आत्मज्ञानी एवं सतोगुणी पंडित से प्रतिदिन कथा सुनकर सतोगुणी हो गया और मोक्ष प्राप्त किया।

अपने भले के लिए– भारत भूषण पंडित मदन मोहन मालवीय कहते थे "ऐ भारतवासी! यदि अपना भला चाहते हो तो प्रत्येक गांव में व्यायामशाला, कथाशाला, विद्याशाला, सत्संग सभा खोलिये। सत्संग सभा होगी तो उससे सब जानकारी मिलती रहेगी, फिर उस प्रकार आचरण करेंगे।

चाय, बीड़ी और सिनेमा– आदत एक बार पड़ जाती है तो फिर छोड़ना कठिन हो जाती है। जिस प्रकार सेठ को सत्संग में जाने और कथा सुनने की आदत थी तो रुक नहीं सकता था। इस प्रकार सिग्रेट एवं बीड़ी पीना, चाय पीना और सिनेमा देखना ये बुरी आदतें हैं, खराब एवं हानिकारक हैं। सिग्रेटों से टी.बी. और कैंसर जैसी अनेक दूसरी बीमारियां होती हैं। अंग्रेज चाय सिग्रेट मुफ्त में देकर लोगों को आदती बनाकर, करोड़ों रुपये भारत के अपने देश ले गए। अतः तुम इनको छोड़ो। पहले टी.बी. किसी राजा अथवा शाहूकार को होती थी, किन्तु अब तो ऐसी बीमारियां घर घर में हो गई हैं।

डाक्टर बहुत तो बीमारियां भी बहुत। नशा निकला है निकार शब्द से। अतः उन्हें छोड़ो। मेरी रली है कंधे पर और रोटी राज्य पर। देश और पहाड़ घूम रहा हूं, वे खबरें सुन रहा हूं और बता रहा हूं। सिनेमा ने भी सारे मुल्क में सत्यानाश कर दिया है। पैसे भी जायं और बीमारियां भी खरीद की जायं। भद्दे भद्दे गाने और खराब चित्र न देखने चाहिये।

लीलाशाह जब बीस वर्ष का था तब प्रतिदिन साठ बीड़ी पीता था। एक डाक्टर ने उसे बताया कि बीड़ियां पीने से ३५ बीमारियां होती हैं। पहले रक्त खराब होता है। तब लीलाशाह ने क्या किया? बीड़ियां पीना बन्द कर दिया। सत्य तो सबको कहना चाहिये। नानी को भी सत्य कहना चाहिये, भले ही वह छिपाकर पेड़ा न खिलाएगी और क्या करेगी? लीलाशाह ने मन को कहा कि बीड़ियां मांगोगे तो तुझे भोजन नहीं दूंगा और यदि भोजन मांगोगे तो तुझे बीड़ियां न दूंगा। जाकर लीलाशाह से पूछो। तत्पश्चात् उसने

बीड़ियां पीना छोड़ दीं। आज पच्चीस वर्ष का है, परन्तु उसने फिर बीड़ियां न पी हैं।

सत् दर्शन- तुम इधर क्यों आये हो ? कहोगे कि "स्वामी जी, आपके दर्शन करने के लिए। देखा मुख हुआ सुख। यदि ऐसा है तो तुमने मेरा मुख देखा, अब जाता हूँ। सदैव बचो ! ऐसा नहीं है। ध्यान देकर सुनो। यदि किसी को बुरा भला कहो, तो भी उसे कहो कि तेरी नौका तरे" ऐसे बुरा भला कहने से भी उसे आशीर्वाद दो।

"कबीर दर्शन सन्त का, साहब आवे याद।"

सन्तों के दर्शन करने से सच्चा परमेश्वर याद आता है। तुम कहोगे कि स्वामी जी, मन स्थिर नहीं होता। आप हमें याद दिलाते हो सन्त के पास जाएं तो उन्हें सुनना चाहिये। सन्त बनना कठिन है। तुम कहोगे कि हम तो आपको सन्त समझते हैं। अरे! मुझ में तो अब तक सन्तपने के थोड़े लक्षण हैं, तो भी तुम सन्त समझते हो; किन्तु यदि सन्तपने के सभी लक्षण आ जायें तो पता नहीं कि कौन सा पद मिले और पता नहीं कि कहां होता? सन्त तुकाराम गुजरात वाले भी बड़े सन्त हुए हैं। क्षत्रियों में भी सन्त शेवाराम हुआ है।

मानव बनो- मानव बनो, मानवता के गुण सीखो और प्राप्त करो। इन्सान वह है, जो सबका भला सुने और करे। मीरा ने कहा है कि "जो निंदा करे हमारी, नरक पावे सोई; आप जाए नरक में, पाप हमारे धोई।" आत्म अर्थात् अपना स्वयं। कोई विरला होगा, जिसने अपने आपको पहचाना होगा। प्रत्येक कहेगा कि मैं सही हूं। तुम कहोगे कि स्वामी जी, यह बात आवश्यक है क्या? अरे हां। जिसने स्वयं को न पहचाना, वह पशु है।

आनन्द- यह चाह रखो कि सदैव रहने वाले आनन्द में डूबे रहें। आलस्य छोड़ो। भगवान में प्रेम बढ़ाओ। प्रति दिन उठते समय और रात को सोते समय १०८ बार "हरि ओम तत् सत्" जपो। देखो भगवत् गीता अध्याय १७ श्लोक २३। कोई भी काम आरम्भ करने पर और भोजन खाने से पहले ३०-४० बार भगवत नाम जपो। तात्पर्य यह है कि घूमते फिरते, काम करते हुए ईश्वर नाम उच्चारण करो। पिछली भूलें सब डाल दो खड्डे में, किन्तु भविष्य में भूल न करो। सिन्धी कवि सामी साहब कहते हैं, जिसका अर्थ है कि बीती वह बीती, शेष सत् रहन सहन रखो। प्रियतम को घुसकर देखो। मनुष्य देही, फिर तुझे नहीं मिलेगी।

मनुष्य शरीर प्राप्त करके यदि तुमने सद् स्वभाव धारण न किये तो फिर संसार में आकर तुमने क्या किया? हृदय में ज्ञान के सूर्य को जगाना चाहिये। ये संसार के पदार्थ पानी की लहरें हैं और भगवान एक सागर है। हम सागर को भुलाकर लहरों में बह जाते हैं। भगवत ध्यान में रहो और उसकी स्तुति करो। साधु वासवानी कहते थे कि सब जाकर डूबो! किस में? भगवत प्रेम रूप सागर में। यदि भगवान में डूब जाओगे तो जन्म-मृत्यु के दुःखों से छूट जाओगे। मदालसा ने कहा था कि जो मेरी कोख से जन्मे, वह फिर पैदा न हो। इसके लिए उसने ऐसी लोरी दी थी। चूड़ाला भी ज्ञान की बातें बताती थी तो राज्य भी चलाती थी और राजा को ज्ञान देकर, उसका बेड़ा पार किया।

तुलसीदास को भी उसकी स्त्री ने कहा कि जैसी इस शरीर से प्रीति रखी है, यदि ऐसी भगवान से रखो तो मन्जिल पर पहुंच जाओ। इसी प्रकार नारियों ने नर सुधारे और तारे।

"लाठी चरवाहे की, भाग्य परमात्मा का।"

माताओं को परामर्श– माताओं को कहूँगा कि पतिव्रत धर्म का पालन करने के लिए पति की सेवा सीता की भांति करो। वह राम के साथ महल छोड़कर बन में गई थी।

दो बढ़ई मित्र एक दूसरे से बिछड़ गये। कुछ वर्षों के पश्चात् एक ने दूसरे को लिखा कि अमुक दिन पर तुम्हारे पास आऊंगा। समय पर उसके पास आया और आकर देखा कि यह मित्र तो जवान और स्वस्थ बैठा है, परन्तु मैं इससे १५ वर्ष छोटा, फिर भी बड़ा एवं बूढ़ा लग रहा हूं! उससे हाल पूछा। इस पर उसने उत्तर दिया कि 'यह सब तुम्हारी भौजाई की कृपा है, जो उसने मुझे इस तरह सुखी रखा है, जिस भांति राम को सीता ने। कहो तो प्रत्यक्ष दिखाऊं।' उसने भी कहा कि प्रत्यक्ष दिखाओ।

उसे कहा कि अच्छा देखो। वह भोजन पका रही थी, उसे आवाज देकर कहा हथौड़ा ले आओ। सात मास का गर्भ था, तो भी भोजन छोड़कर हथौड़ा ले आई। जैसे ही दरवाजे पर आई तो पति ने उसे कहा कि शीशा तोड़ दे। पत्नी ने वहीं शीशा तोड़ दिया। पति ने उसे कहा कि "तुमने यह क्या कर दिया? ढाई रुपये नाश कर दिये। फिर मित्र की ओर देखकर कहा- भाई! ऐसी स्त्री मुझे मिली है, जो मिनट में ढाई रुपये नष्ट कर दिये। सब भाग्य की बात है!" कोई अन्य होती तो उसे उत्तर देती कि तुमने कहा, तभी मैंने शीशा तोड़ा; किन्तु वह अतिथि के सामने डांट सहन करके, जाकर भोजन पकाने लगी। यह दशा देखकर मित्र ने कहा- तुम भाग्यवान हो कि तुम्हें ऐसी गुणवती और पतिव्रता स्त्री मिली है। अतः तुम स्वर्ग में हो। तुम्हारे कुछ

पुण्य किये हुए हैं। जिस पत्नी को अच्छे स्वभाव वाला व सुशील पति मिला तो समझो कि उसके भी कुछ पुण्य किये हुए हैं।"

मित्र ने कहा कि "इसके कारण मैं सर्वदा प्रसन्न रहता हूं, स्वास्थ्य भी अच्छा है। सब तुम्हारी भाभी के कारण है।"

माताओ! तुम भी इस उदाहरण से शिक्षा ग्रहण करो। घर को स्वर्ग बनाओ और पति की सेवा करो। साधारणतः कहा जाता है कि "बालक सुधरे तो जग सुधरा" लीलाशाह कहता है कि "घर सुधरे तो जग सुधरा।" जिस घर में झगड़ा है, उसका प्रभाव घर पर, पड़ोस पर, गांव पर और समाज पर पड़ता है, जो पाप उस पर पड़ता है। घर का काम काज करो, चर्खा चलाओ, चक्की पीसो, भोजन बनाओ और कढ़ाई का काम करो। साथ साथ भगवान का नाम भी लेती रहो। तुम्हें किसी भी समय क्रोध आवे तो मौन धारण करो अर्थात् चुप होकर बैठो और बोलो नहीं। घर में झगड़ा न करो। घर की सफाई करो। बच्चों का पालन अच्छी तरह करो और उन्हें शिक्षा दो। जो स्त्रियां घर को स्वर्ग बनाएंगी, वे स्वर्ग में जाएंगी। विवाह में दहेज न लो। त्यौहारों पर कुछ मांगो नहीं। जो मिले, उस पर प्रसन्न रहो, सहानुभूति करो।

"कर भला तो होवे भला।" स्मरण रखो कि "तुम्हारे बच्चे को सुलक्षणी साथिन मिली तो तुम्हें सारा दहेज मिला।"

सेवा– मैं तुम्हें ये वचन सुनाता हूं, यह भी सेवा है। तुम कहोगे कि "स्वामीजी, सेवा का अभिमान होगा?" अरे नहीं। क्योंकि मैं समाज का ऋणी हूं। सेवा करके समाज

ऋण उतार रहा हूं। परउपकार तब करूं, जब ऋणी न होता। गृहस्थ आश्रम बड़ा है। गृहस्थ में रहकर सेवा करो। यदि गृहस्थी न होते तो मैं पैदा ही न होता। मेरी बातें पसंद आती हैं अथवा नहीं? छः वर्षों के पश्चात् भी मेरी बातें अच्छी न लगें तो लौटा कर मेरे कर्म में फेंकना।

आत्मा और वैराग्य– आत्मा अमर है। यह शरीर है, जो जन्मता और मरता है। जीव एक शरीर छोड़कर दूसरा धारण करता है। मन को अपना नौकर बनाओ। जो ईश्वर को याद नहीं करता, वह शैतान है। आत्मा है आनन्द स्वरूप और अन्य सब लहरें। अतः संसार की विषयों में उलझो नहीं। ये लहरें जहां से आती हैं, उसे देखो। यह घर मुसाफिरखाना (सराय) है। अच्छे कर्म, अच्छे विचार, अच्छा संग और अच्छे संकल्प करो।

घर मन्दिर तथा कर्म पूजा– एक व्यक्ति को पांच बेटे थे। जिनमें से चार को पहले ही दहेज लेने के सिवाय विवाह करवाया था, अन्तिम पांचवे के लिए घर ढूंढने लगा। आखिर एक कन्या का उसे पता लगा कि वह देवी रूप भगवान की भक्त है। घर के सब कार्य भोजन बनाना, सिलाई कढ़ाई और घर चलाना आदि खूब जानती है। उसी से अपने पुत्र का विवाह करवाया। जब वह कन्या विवाहित होकर ससुराल में आई तो देखती है कि चारों बड़ी देवरानियों में झगड़ा लगा पड़ा है। उसने दिल में कहा कि कैसे घर में आकर फंसी हूं।

एक दिन भीतर से आवाज आई कि इस घर के अच्छे कर्म किये हुए हैं, जो तुम्हारे जैसी सुलक्षणी बहू उन्हें मिली

है और तुम्हारे यहां आने से पास वाले १०८ गांवों का भला होगा। यह सुनकर वह धैर्य से काम काज करती थी।

उसने बड़ी देवरानी से कहा कि तुम काम न करो, मैं तुम्हारा काम करूंगी। इस प्रकार दूसरी का, फिर तीसरी का और अन्त में चौथी का काम भी स्वयं करने लगी। चारों देवरानियों से काम छुड़ाकर, घर का समस्त कार्य स्वयं अकेली करती थी और सायं को उन्हें नियम से रामायण की कथा सुनाती थी। बीच बीच में उन्हें गीता का ज्ञान और सुखमनी शिक्षा भी सुनाती थी। अतः घर से झगड़ा, द्वेष, ईर्ष्या बिलकुल चले गये और सभी का आपस में प्रेम बढ़ा और छोटी बहु को प्यार करने लगीं।

चार पांच मास के पश्चात् उनकी सास ने कहा- "हे बहुओ! कान खोल कर सुनो, यह छोटी बहू ठगने वाली है, जो तुम्हें ठग रही है।" सास की बात सुनकर वे आश्चर्य में पड़ीं और आपस में धीरे बोलने लगीं कि यह तो है। काम काज स्वयं करती है, हमें हाथ लगाने भी नहीं देती और प्रेम से कथा वार्ता भी सुनाती है। सास ने फिर कहा- "वह बराबर घर का काम काज कर रही है, परन्तु घर है भगवान का मन्दिर और घर के काम है भगवान की पूजा। अतः यह छोटी बहू, सभी काम करके तुम्हारे सब पुण्य ले जाती है। तुम स्वयं को संभालो।"

यह बात सुनते ही चारों बड़ी बहुओं की आंखें खुलीं और उस दिन के पश्चात् सभी घर का काम मिलकर करने लगीं और बड़े प्रेम से आपस में चलने लगीं। प्रतिदिन सायं को कथा सुनती रहती थीं। इस प्रकार वह घर नरक से स्वर्ग बन गया।

मातृ शक्ति– माताओं में शोभा, शक्ति और श्रद्धा, पुरुषों से अधिक है। वे सभी काम कर सकती हैं। वे अबलाएं नहीं, किन्तु सबलाएं हैं। स्त्री घर की रानी है। गृह स्वामिनी अर्द्धांगनी है अर्थात् पती का आधा शरीर। "एक सुमति तो तेरा नगर सारा" यह स्मरण रखो।

दुनिया एक गुलदस्ता– एक सेठ था, उसे एक गुलदस्ता हाथ में था। उसने विचार किया। वह गुलदस्ता उसने एक सन्त को, जो सामने से आ रहा था, उसे भेंट स्वरूप दे दिया। सन्त वह गुलदस्ता लेकर देखने लगा। प्रत्येक फूल को देखकर, प्रसन्न होते हुए, उसकी प्रशंसा करते हुए, सुगंधि लेता रहा।

सेठ ने विचार किया कि सन्त तो मुझे देखता ही नहीं और न मुझसे बोलता है। किन्तु गुलदस्ते के देखने में ही मगन है। उसने सन्त को प्रार्थना करके कहा, "स्वामी जी, गुलदस्ते को छोड़कर, मेरी ओर भी देखिये।" तब सन्त गुलदस्ते को फेंककर सेठ से बोलने लगा- यह एक दृष्टान्त है। इस का तात्पर्य यह है कि वह सेठ है परमात्मा और गुलदस्ते के फूल हैं ये सांस्सारिक पदार्थ। हम उस भगवान को भुलाकर गुलदस्ते रूप संसार के पदार्थों में लीन हो गए हैं। हमें सन्त की भांति गुलदस्ते को छोड़कर सेठ अर्थात् परमात्मा को देखना चाहिए और उसका स्मरण करना चाहिए, तभी बेड़े पार होंगे।

सिन्धी भाषा- दुनिया में कोई भाषा है तो वह है सिन्धी भाषा। यदि मैं राजा होता तो सभी भाषाएं सिन्धी भाषा पर कुर्बान कर देता क्योंकि सिन्धी भाषा एक गुलदस्ता

है, जिसमें सभी भाषाओं के शब्द फूल रूप धारण करके आये हैं। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी, पारसी, गुजराती आदि के शब्द सिन्धी में हैं। तुम यदि अपनी सिन्धियत को स्थित रखना चाहो तो सिन्धी भाषा को न भुलाओ। सिन्धी में भी असंख्य पुस्तकें छपी हुई हैं, वे पढ़ो।

सिन्धी भाषा गुलाब के फूल की तरह है। गुलाब के फूलों के २०० प्रकार हैं, जिन में से ८० मैंने भी देखे हैं, जो सभी विभिन्न प्रकार के थे। सिन्धी भाषा रूप गुलाब फूल की सुगंध लेते चलो।

(६०)

विद्यार्थियों को उपदेश*

भलाई करके भुला दें– हमारे को सदा और लोगों के गुण देखने चाहिये, अवगुण नहीं देखें। औरों की बड़ाई भले की जाय, किन्तु खुद की प्रशंसा नहीं करें और न अपनी बड़ाई सुने। यदि अपनी बड़ाई हो रही हो तो समझना चाहिए कि हमारी बुराई हो रही है। यदि ऐसा नहीं मानकर चलोगे तो अभिमान बढ़ जायेगा। अभिमान बढ़ जाने से स्थिति से नीचे गिर जाओगे। तुम जो भी अच्छे कार्य अथवा लोगों के भले के कार्य करते हो तो उनको भूल जाइये व ऐसा समझ लो कि वे भलाई के कार्य हमने नहीं किये हैं। किन्तु यह समझना चाहिए कि परमात्मा की हम पर दया हुई है, तब तो हमसे ऐसे भलाई के कार्य करवा रहे हैं।

अलग रहें– यह संसार एक धर्मशाला है और इस में रहते हुए अलग रहें। ऐसे रहें, जैसे फूकमल का ल जल में रहता है, परन्तु जल की एक बूंद भी उस कमल के फूल पर नहीं रहती। इस संसार में परमात्मा ने जो भी उत्पत्ति की

* १४ नवम्बर १९५६ को नसीराबाद (राज.) में नेताजी स्कूल में विद्यार्थियों को उपदेश।

है, उस सबसे हमारे को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। इस पर सन्त तुलसीदास जी ने कहा है :-

तुलसी इस संसार में, भांति भांति के लोग।
सबसे हिल मिल कर रहिये, नदी नाव संयोग ।।

नाव में कई बैठते हैं और कई उतरते हैं, परन्तु कोई भी उस नाव को अपनी नहीं समझता। ठीक इस प्रकार हम भी संसार में रहें और सभी से हिल मिल कर रहने पर भी अपने को एक यात्री की तरह समझें।

यह संसार धर्मशाला है। जैसे धर्मशाला में जाने से बर्तन भाण्डे व बिस्तर आदि मिल जाते हैं और हम उन्हीं से अपने कार्य निकालते हैं, परन्तु उनको अपना नहीं मानते। इसी प्रकार संसार के सभी वस्तु पदार्थों से काम लेते रहें, किन्तु इनको अपनी न समझ कर मोह का त्याग करें। शास्त्रों में कहा है कि :-

मातृ देवो भवः पितृ देवो भवः।
आचार्या देवो भवः अतिथि देवो भवः ।।

माता, पिता, आचार्य (गुरु) और अतिथि (**मेहमान**) इन चारों को देवता व पूज्य समझो। उनके साथ अपने कर्त्तव्य पालन अत्यन्त आवश्यक है। यह बहुत बड़ा पुण्य धर्म का काम है।

संग कुसंग– एक बात पर अवश्य ध्यान रखो कि सत्संग से उन्नति व सुख प्राप्ति होती है, परन्तु कुसंग (बुरे संग) से नित प्रति गिरावट और उलझनें मिलती हैं।

बुरेसंग व कुसंग से मन में बुरे संकल्पों (सूक्ष्म विचारों

की और अच्छे संग से अच्छे संकल्पों की उत्पत्ति होती है। बुरे संकल्प हमें पापों की ओर ले जाते हैं और अच्छे व शुद्ध संकल्प सुख समृद्धि व सन्तोष दिलाते हैं।

रानी कैकेई का राजा दशरथ के साथ बहुत प्रेम था, उसने 'युद्ध भूमि' में भी राजा का साथ नहीं छोड़ा व युद्ध स्थलों पर भी सदैव साथ रहती थी। एक बार रानी कैकेई ने अपने जीवन को जोखिम में डालकर भी राजा दशरथ के प्राण बचाये थे, इस पर राजा दशरथ ने प्रसन्न होकर 'वर' (वचन) दिया कि आज जो भी मांगोगी वह दे दूंगा। कैकेई ने उस समय कुछ नहीं मांगा। थोड़े दिनों बाद कुल्टा दासी मन्थरा के कुसंग से कैकेई के मन के संकल्प (मन के सूक्ष्म विचार) बिगड़ गये। उसने रामचन्द्र जी को "बनवास" भेजने का वचन मांगा, जिससे राजा दशरथ की मृत्यु का कारण रानी कैकेई बन गई। यह है कुसंग का फल।

सत्संग करने के साथ साथ अच्छी पुस्तकें भी पढ़ें। सन्त महात्मा सभी अच्छी पुस्तकों से ही बने हैं। महात्मा गांधी व पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी अच्छी अच्छी पुस्तकों से बहुत कुछ लाभ लिया था।

सिनेमा से हानि– सिनेमा नहीं देखें, सिनेमा से लाभ से अधिक बुरे प्रभाव मन पर पड़ते हैं और कई प्रकार से अपने में स्थूल व सूक्ष्म बुराइयां आ जाती हैं। सिनेमा से तमोगुण और रजोगुण बढ़ जाते हैं और शृंगार व फैशन के साथ में चरित्रहीनता जैसे बुरे विचारों की उत्पत्ति हो जाती है और कितने ही रोग भी हो जाते हैं, जैसे आंखों की रोशनी कमजोर व वीर्यपात आदि। इस लिये सिनेमा जाना पाप समझकर नहीं जाना चाहिये।

सात्विक भोजन– एक और खास बात ध्यान देने योग्य है कि शरीर को ठीक रखने के लिए भोजन सात्विक व सादा, शीघ्र पाचक होना अति आवश्यक है। बद हाजमा 'अपचन' रहने से रोगों के कई कारण बन जाते हैं। भोजन शरीर को ठीक रखने हेतु खाना चाहिये, शरीर भोजन के लिए नहीं। भोजन शरीर को ठीक रखने के लिए है, ऐसा समझकर ही भोजन शान्त चित्त, एकान्त व शुद्ध स्थान पर करना चाहिए। व्यायाम प्रतिदिन करना चाहिये। प्राणायाम, ऊंचे श्वास प्रातः सायं दोनों समय करने से मन प्रसन्न व ताजगी में रहता है। दो समय से अधिक बार भोजन नहीं किया जाय।

अन्त में मेरा यह कहना है कि माता, पिता और गुरू की सेवा करते रहें, यही धर्म माने। गरीबों व दीन दुखियों को संभालते रहें व अनाथ बच्चों को पुस्तक व पढ़ाई में सहकार करने के साथ ईश्वर को न भूलें। जिसने हम सभी को पैदा किया है, उस परम पिता परमात्मा का अवश्य ही स्मरण करने से समृद्धि की प्राप्ति होगी।

(६१)

तृष्णा*

स्वामी जी को कोई भाई गले में फूल माला डाल रहा था। वह फूल माला स्वामी जी ने उतार कर, उधर संकेत देकर कहा कि यह फूल माला है, इसमें जितने भी फूल हैं, उन सभी की सुगन्ध लेने की अच्छी कला तो केवल मक्खी भंवर (कीट) में और रस चूसने की कला शहद की मक्खी के मुख में है। ये कलाएं अन्य में नहीं रह सकतीं। ठीक इसी प्रकार से सभी में अलग अलग कलाएं हैं।

हम सभी जिन्होंने संसार में जन्म लिया है, उनको अपनी कोई न कोई कला दिखाकर जन्म सफल करना चाहिये। यह संसार आशा रूपी नदी है, उसमें तृष्णा रूपी एक घड़याल (मगरमच्छ) है, वही संसार रूप नदी से पार करने में बाधक है। वह तृष्णा रूप घड़याल (मगरमच्छ) बहुत ही बुरा है। यदि इस तृष्णा रूप घड़याल से हम बचे रहें तो संसार रूप नदी से पार हो जायेंगे।

आशा मन को सताती है। आशा जब परिपक्व हो जाती है, तब ही उसका नाम तृष्णा कहा जाता है, यही हमको भुला देती है। हम इसके वशीभूत होकर संसार रूप नदी पार न कर पायें तो हम लोगों का जन्म लेना व्यर्थ हो जायेगा।

* श्री दीपचन्द्र जी के घर अजमेर में दिनांक १-११-५६ को किया गया प्रवचन।

चिन्ता बड़ा ही रोग है – इस पर एक दृष्टान्त है कि एक सेठ जी ने अपने मुनीम से पूछा कि मेरे यहां कितनी पीढ़ी तक खाने को धन है। मुनीम जी ने हिसाब लगाकर कहा कि ग्यारह पीढ़ी तक खाने जितना तो धन मौजूद है। यह सुनकर वह सेठ जी (जो राजसी ठाठ में था) बड़ा ही चिन्तित हो गया कि ग्यारह के बाद आने वाली बारहवीं पीढ़ी कहां से खायेगी और उनका क्या होगा। इस प्रकार के व्यर्थ चिन्तन में दिन प्रतिदिन सूखता गया।

यह दशा देखकर उनके पुत्र बड़े दुःखी हुए और एक महात्मा के पास जाकर नम्रतापूर्वक अपने पिता जी की चिन्ता का सारा हाल बताया। महात्मा जी ने उत्तर में कहा कि तुम्हारे पिता का दुःख तब ही दूर होगा, जब वे ग्यारस का उपवास करें व एक थाली फल फूलों की भरी अमुक ब्रह्मचारी को दान देकर आशीर्वाद लें। पुत्र ने पिताजी से महात्मा का बताया हुआ हाल आकर कहा। पिता ने पुत्र की यह बात मानकर ग्यारस के दिन उपवास करते हुए एक थाली फल फूलों से भरकर महात्मा के बताये अनुसार ब्रह्मचारी के पास ले गये और बड़ी नम्रता से ब्रह्मचारी को स्वीकार करने का आग्रह किया। किन्तु ब्रह्मचारी ने उत्तर में लेने से इन्कार करते हुए कहा कि आज तो आपसे पहले ही कोई प्रेमी दे गया है और अधिक आवश्यकता नहीं है। इस पर सेठजी ने कहा कि कृपा करके दूसरे दिन के लिए रख दीजिए। परन्तु ब्रह्मचारी ने कहा कि सेठ जी, कल की चिन्ता मैं क्यों करूं, मैं तो कल पर भरोसा रखता ही नहीं, जिसने आज भेज दिया है, तो वह कल भी भेजेगा ही। यह सुनकर उस सेठजी की अज्ञानी आंखें खुल गईं। वह समझ गया कि इस ब्रह्मचारी को तो कल की भी चिन्ता नहीं और मैं मूर्ख

बनकर बारहवीं पीढ़ी की चिन्ता अभी से कर रहा हूं, जबकि ग्यारह पीढ़ियों तक का खर्चा योग्य धन मौजूद है। इस प्रकार से अज्ञान हटने के बाद वह सेठ जी चिन्ता छोड़कर बड़े सुख में रहने लगे।

आशाएं मन को सताती हैं और जब आशाएं व तृष्णाएं अन्दर से हम हटायेंगे, तब हमारा मन वश में रहेगा और हम हरि-भजन कर सकेंगे। और फिर तो संसार के दु:ख मिलेंगे ही नहीं।

काम क्रोध का त्याग– याद रखना चाहिए कि काम व क्रोध से बचने से हम में शक्ति बढ़ती है। जैसे इन्जिन में कोयले डालने के बाद उसकी गैस रोके जाने से अतुल शक्ति पाकर उक्त इन्जिन से बड़े भारी कार्य लिए जाते हैं। यदि ढक्कन खोल कर गैस निकाली जाय तो कुछ भी कार्य नहीं बनते। ठीक इसी प्रकार हमारे शरीर की अवस्था समझी जाय। यदि हम काम और क्रोध को रोक सके तो हमारे भीतर बहुत बड़ी शक्ति आ जायेगी।

इस संसार में सुख, वैभव आदि सर्व क्षण-भंगुर आने जाने वाले हैं। शरीर भी बिगड़कर नाश हो जाता है और बन भी रहे हैं। जैसे एक वृक्ष के कुछ पत्ते सूखकर गिर जाते हैं और नये पत्ते पैदा होते हैं। ठीक उसी प्रकार से ही संसार की दशा है, रात्रि के बाद दिन आता है व जन्म के बाद मृत्यु भी होना अनिवार्य है। परन्तु आत्मा कभी मरते नहीं, सदा अजर अमर (आत्मा) नहीं बुझने वाली ज्योति है।

संसार में सुख दु:ख, शीत उष्ण, मान अपमान, हानि-लाभ सभी के साथ-साथ चलते रहते हैं। इन सभी में हमें समान रहना चाहिए।

मृत्यु की याद– हम सदा शरीर के श्रृंगार, पालन-पोषण में लगे रहते हैं। हम अज्ञानता के कारण इस शरीर को सत्य मानकर सदा रहने वाला समझकर जलन व वितण्डा वादों में फंसकर अशान्ति की अग्नि जलाते रहते हैं। जबकि हम इस संसार में एक चूहे के समान हैं, जिसके पीछे बिल्ली का शिकारी पंजा मौजूद है। इस प्रकार हमारे जन्म से मौत (मृत्यु) का भय लगा हुआ है, फिर भी हम इस मृत्यु रूप पंजे को भूल बैठे हैं। यदि सदा मृत्यु को याद करते रहें तो फिर कुकर्म व धोखाधड़ी जैसे पाप कर्म हम नहीं करेंगे। हमें सदा मृत्यु की याद रहने पर परम पिता परमात्मा की सदा याद रहेगी, एक क्षण भी उसको भुला नहीं सकेंगे।

हम लोगों को याद रखना चाहिये कि गर्भ का दु:ख, बचपन का दु:ख, बुढ़ापे का दु:ख व कई प्रकार की परेशानियां एक ही जन्म में आती हैं, तो चौरासी लाख योनियों में भटकने से कितने कष्ट सहन करने पड़ते हैं। यदि इस प्रकार सदा याद करते रहें तो फिर पाप कर्मों व कुकर्मों से बचकर सत्यानन्द को इस जन्म में ही प्राप्त कर सकेंगे। यही हमारा मूल ध्येय (मूल मकसद) पूरा होकर जन्म सफल होगा।

(६२)

तुम देह नहीं हो*

शरीर के भुलाने से अखण्ड आनन्द प्राप्त होगा। जैसे रात को गाढ़ निद्रा में आनन्द आता है, वैसी स्थिति जाग्रत में होनी चाहिये अर्थात् शरीर भाव बिलकुल त्याग देना चाहिये कि मैं शरीर हूं। जानना चाहिये कि अखण्ड आनन्द ही मेरी जान है। भगवान को खूब याद करो और दर्शन करो। तब प्रश्न उठेगा कि स्वामी, हमें तो भगवान का दर्शन होता ही नहीं। हम भगवान का दर्शन कैसे करें। मैं सौगंध खाकर कहता हूं कि तुम भगवान के दर्शन प्रतिदिन करते हो जो सबका साक्षी, ज्ञान स्वरूप, प्रकाश स्वरूप, सदैव स्थित, एक रस है, किन्तु उसे जान नहीं सकते।

तृष्णा— बुद्धि न होने के कारण हम काम, क्रोध, मोह, अहंकार और लोभ में डूबे हुए हैं। उपरोक्त विकारों में से एक भी होगा तो सफलता नहीं मिलेगी। तृष्णा ही है, जो मनुष्य को जन्म-जन्म के चक्र में भटकाती है। मन को कहना चाहिये कि अब तक मैं बहुत दिनों से तुम्हारा दास होकर रहा था, लेकिन अब मैं तुम्हें अपना दास बनाऊंगा। तृष्णा ऐसी वस्तु है, जो तृप्त होने वाली नहीं है। यह मटका कभी भरने वाला है ही नहीं, चाहे उसमें हजार लाख मन डालो तो भी खाली ही खाली रहेगा।

* २७ मार्च १९६२ को बांटवा में किया गया प्रवचन।

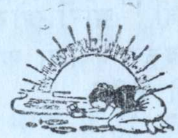
जिसमें जैसी शक्ति हो, वह वैसी उपासना करे चाहे निर्गुण की चाहे सगुण की। शास्त्रों में इस प्रकार लिखा हुआ नहीं कि पहले सगुण की, तत्पश्चात् निर्गुण निराकार की उपासना की जाय। तुम्हारी जैसी भावना होगी, तुम उसको पहुंच सकोगे। सुषोप्ति अवस्था में जो आनन्द है, यह भगवान का दर्शन है, जो जाग्रत में भी होना चाहिये।

वैराग्य — शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध से बचना चाहिये और आवश्यकता अनुसार संसार की चीजों से ममता मोह रहित काम निकालना चाहिये। संसार की कोई भी वस्तु और शरीर में तो रुधिर, रोग, मास, थूकों और बलगम से भरा हुआ है। वह नाशवान है। शरीर और संसार को उपरोक्त रूप से ठीक प्रकार समझ करके, किनारा कीजिए। इसको कहा जाता है वैराग्य। संसार एवं शरीर को इस रीति से समझा जाय। उसे न प्रिय और न आनन्द रूप समझा जाय, अपितु उससे घृणा की जाय। यह सोलह आने सपने वत् है, इसमें रत्ती मात्र भी संदेह नहीं। स्वप्न में अनेक रूप रंग दीखते हैं, लेन देन होता है, जो जाग्रत में सभी झूठे दिखाई पड़ते हैं। वैसे यह जाग्रत अवस्था एवं पदार्थ आदि बिलकुल झूठे सपने की नाईं हैं और न सच्चे। बिलकुल झूठे हैं। सदैव यह विचार चलता रहे कि एक आनन्द स्वरूप के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। संसार की वस्तुओं और दुनिया को मुसाफिर-खाना समझना चाहिये। ये सभी चीजें अपने लिए हैं, किन्तु अपनी नहीं हैं, केवल काम निकालने के लिए हैं। यह शरीर न पहले था, न बाद में रहेगा, अपितु आत्मा ही आत्मा, आनन्द ही आनन्द, एक ब्रह्म ही व्यापक, अखण्ड सबका साक्षी, सब में एक समान है। यह देह पांच

तत्त्वों की बनी हुई है, जो किराये पर खरीद लाए हैं, परन्तु हम अपने को देह समझ बैठे हैं, जो देह पांच तत्त्वों की है, वह न हम स्वयं हैं और न देह हमारी है। यह देह पांच तत्त्वों की बनी हुई है। हम वे तत्त्व नहीं हैं। मैं सत्य स्वरूप, देह से भिन्न, देह और संसार को जानने वाला, उसका साक्षी प्रकाश रूप, नित्य रहने वाला, उससे भिन्न, सबमें एक समान, एक जैसा, एक हूं। अतः देह तथा संसार, स्वयं अथवा अपना न जानना चाहिए और जिन पांच तत्त्वों से संसार तथा क्षरीर बना है, ये पांच तत्त्व भी मेरी एक काल्पनिक लहर से उत्पन्न हुए हैं, जो लहर खयाल भी बिलकुल झठे सपने समान है, जो वास्तव में कुछ भी नहीं है। शरीर एवं संसार के पदार्थ सभी जड़ हैं। न वे अपने को पहचान सकते हैं और न दूसरे को। केवल मात्र एक आतमा ज्ञान स्वरूप सत् हैं। जो हम देखते है, त्ररीर अथवा संसार, वह सब उस ज्ञान स्वरूप सत्ता से प्रतीत हो रहा है। तुम इस संसार में स्वप्न की नाईं सभी काम काज करते रहो, मोह ममता के सिवाय। स्वयं को कभी मत भूलो।

काल्पनिक बाग– केवल तू ही तू एक सिरजनहार है। यह सब तुम्हारा काल्पनिक बाग सपने की तरह रच करके और तुम देख रहे हो। तुम व्यापक, सच्चिदानन्द स्वरूप हो। आकाश की तरह तुझमें कोई कमी नहीं आ सकती। केवल शरीर अलग अलग दीखते हैं, इस लिए आतमा अलग अलग नहीं हुआ। यथा घड़े अनेक हजारों हैं, जिन सबमें आकाश है। घड़ों को तोड़ने से आकाश ही आकाश रहेगा, जो पहले भी था और अभी भी है। ये नाम रूप अलग अलग भाषित होते हैं, जो अज्ञान के कारण विदित होते हैं। जब ज्ञान

होता है, तब एक आतमा के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं रहेगा। उस ज्ञान और प्रकाश के अतिरिक्त कुछ भी नहीं देख सकेंगे। उस ज्ञान द्वारा ही मैं सबको जानता हूं अर्थात् देख सकता हूं। 'पच्चीकरण' बार बार पढ़ो और 'योग वसिष्ठ' भी मंगा कर पढ़ो। दुःख सुखों की शोभा हैं। सदैव धैर्य से और शान्ति से दुःख सहन किया जाय। जो बने, वह वाह वाह! सबमें भलाई है।



(६३)

जय सत्य की होगी*

युद्ध का क्या?– स्वामी जी बिराजमान थे। किसी प्रेमी ने पूछा कि "स्वामी जी! चारों ओर युद्ध के काले बादल दीख रहे हैं। उन्हें देखकर कलेजा कांप रहा है। अन्त में किसकी जय होने वाली है?"

स्वामी जी ने मुस्करा कर कहा, बाबा यह कोई नई बात नहीं है। युगों से यह पुरानी रीति चलती आ रही है। कौरवों और पाण्डवों के युद्ध को कई सहस्र वर्ष हो चुके हैं, तो भी पाण्डवों की जय गाई जा रही है। श्री रामचन्द्र की रावण से घोर लड़ाई लगी, जिस में कितने ही राक्षस मारे गये। अन्त में राम की जय हुई। क्यों? अत्याचार, अधर्म, अनीति और अन्याय के कारण कौरवों और रावण की हार हुई।

पाप का घड़ा भर कर अन्त में फट जाता है। फोड़ा नहीं देखते कि भरकर अन्त में फट जाता है। जो श्रेय मार्ग पर चलेगा, उसे डर किसका? आरम्भ में कष्ट अवश्य दीखने पड़ते हैं, किन्तु अन्त में सत्य की विजय होती है। भारत

* १४ अप्रेल १९६५ को श्रीकृष्ण गऊशाला आगरे में किया गया प्रवचन।

की भी अवश्य जय होने वाली है, क्योंकि भारत धर्म नीति पर है और सत्य मार्ग पर चल रहा है।

शुभ कर्म करते चलो– कर्म अवश्य करना है, परन्तु सावधान होकर करना है। कुकृत्य से सदैव दूर रहना चाहिये। फल देने वाला वह मेरा कृपालु स्वामी है। अन्त में उस कृपालु स्वामी की दया होगी। सत्कर्मों का फल अच्छा ही होने वाला है। अंगूर के पेड़ को पानी दिया जाएगा तो अवश्य अंगूर ही पैदा होगा, परन्तु यदि बबूल के पेड़ को जल दिया जाएगा, तो अवश्य कांटे उत्पन्न होंगे। गीता के दूसरे अध्याय के ४७ श्लोक में श्री कृष्णचन्द्र, अर्जुन को उपदेश करते हैं :-

"तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार होवे, फल में कभी नहीं और तू कर्मों के फल की वासना वाला भी न हो। तुम्हारी कर्म न करने में भी प्रीति न हो।"

सत्य को शक्ति है। सत्य की कमाई में बरकत (बढ़ोतरी) है। हम बड़ों की कमाई खा रहे हैं। वे सत्य की कमाई करते थे, किसी का बुरा नहीं चाहते थे, सादा खाते थे, सादा पहनते थे तो उनकी वाणी में कितनी न शक्ति होती थी? उनके पास न था इतना धन और न थी इतनी सम्पत्ति; उनके पास न थी मोटर अथवा स्कूटर, न थे बंगले और न ही इलेक्ट्रक पंखे, न थे गोले और बिजलियां। इतना न होते हुए भी हमसे अधिक सुखी थे। किस लिए? सच्चाई के कारण।

पंचों में परमेश्वर – पंचों में परमेश्वर कहते हैं। पहले न थी इतनी कोर्टें और न इतने वकील। झगड़ा होता था तो चार पंच बैठकर निर्णय करते थे। पंचों को मानते थे।

पंच किसी को अपराधी ठहराते थे अथवा चार पैसे दण्ड रखते थे तो वह व्यक्ति मुंह लज्जा से ऊपर उठा नहीं सकता था। सदैव उसे सभा में नीचा दिखाते थे। किस लिए? सच्चाई के कारण।

ज्ञान रूप ज्योति– भीतर ज्ञान रूप ज्योति किस प्रकार जगेगी? अग्नि के पास कमल का पौधा उग नहीं सकता। सारा दिन माया के चिन्तन करने से कैसी शान्ति मिलेगी? "बेटा! सत्संग में क्यों नहीं आते?" कहेंगे कि "स्वामी! समय ही नहीं मिलता। व्यापार को नहीं करेंगे तो बच्चे भूख में मरेंगे। घर की करें अथवा हरि की?" ठीक! एक घण्टा सत्संग नहीं करते हो, फिर जन्म जन्मान्तरों की अग्नि जो भीतर जल रही है, वह कैसे बुझा पाओगे? यह सरल बात है क्या?

गुरू नानक देव जन दिन रात मुख से अमलोक वाणी उच्चारण करते थे। उनकी माता ने उनसे पूछा कि "बेटा! यह दिन रात क्या कह रहे हो?" इस पर साहबों ने उत्तर दिया- "माताजी! आखां जीवां - विसरे मर जाय।" उस अकाल पुरुख का नाम दिन रात उच्चारण करता हूं, तब तो जीवित रह सकता हूं, यदि न जपूं तो जीवित रह न सकूं। यह सब नाम की कृपा है।"

आगे के लिए पूंजी बनाना कोई सरल काम नहीं। हमारे अन्तःकरण से अज्ञान रूप अन्धकार भी तब दूर होगा और बुद्धि सतोगुणी बनती है। गुरुजन फर्माते हैं कि –

"भरीए हथ पेर तन देह, पानी धोते उतरस खेह।
पलीते कपड़ होइ, दे साबुन लैये आह धोइ।
भरीए मत पापां के संग, उह धोपे नावे के रंग।"

सब में उसका प्रकाश– परमात्मा सर्वव्यापी है, वह प्रत्येक घर में रहता है। यदि किसी चक्रवर्ती राजा को आप कहेंगे कि एक गांव के स्वामी हो तो उसे कैसा न क्रोध आएगा? परमात्मा भी एक जगह नहीं रहता। सबमें उसका प्रकाश है, ऐसी भावना रखनी चाहिए।

आकाश एक है किन्तु उपाधि के कारण भिन्न भिन्न दृष्टिगोचर हो रहा है। इसमें आकाश का कौन सा दोष है? घटाकाश, मठाकाश और महाआकाश कहे जाते हैं। घड़े अथवा जगह के नष्ट होने से कोई घटाकाश अथवा मठाकाश नष्ट नहीं हो जाते। महा आकाश सदैव है। वैसे परमात्मा सर्वान्तर्यामी है। वह सब में व्यापक है तो फिर तुम पाप-कर्म क्यों करते हो? यह सब न्यूनता तुम्हारी भावना में है। भावना सदैव शुद्ध रखो तो फिर मोक्ष का द्वार सर्वदा तुम्हारे लिये खुला रहेगा।

किसका ध्यान रखा जाय?– १. देश २. काल ३. वस्तु ४. पात्र। सांसारिक व्यवहार में इन चार बातों का सदैव खयाल रखने से परिणाम अच्छा होता है।

पहली बात तो देश या मकान का खयाल रखना चाहिए कि मैं कहां हूं। भिन्न भिन्न स्थान पर भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ता है। जिस देश में हों, उस देश के वायुमण्डल अनुसार काम में हाथ डालना चाहिये। दूसरी बात है समय की। प्रातः को जो कुछ करना हो, वह सायं को कैसे अच्छा लगेगा। बचपन का काम जवानी में और जवानी का बचपन में कैसे शोभा पाएगा? यदि सफलता प्राप्त करने के अभिलाषी हो तो समय की पाबंदी विशेषतः अनिवार्य है। काल के

कानून के विरुद्ध चलना सदैव हानि का कारण होगा। आत्मिक जीवन के आरम्भिक अवस्था में प्रातः सायं दोनों समय अभ्यास करते रहना अत्यन्त आवश्यक है। "कर्म करने में तुम्हारा अधिकार है और न कर्मों के फल में। तुम फल की इच्छा न रखो और कार्य करने की इच्छा में प्रीति रखो।"

हमें शुभ कर्म करते रहना चाहिये, फल की कामना न रखें। फल तो मिलता ही है, जो अवश्य मिलेगा।

(६४)

नाशवन्त दुनिया*

चिन्ता एवं चिता – चिन्ता को अपने मन-मन्दिर में कदापि आने न दो। चिन्ता एवं चिता दोनों शब्द एक जैसे लग रहे हैं, किन्तु दोनों के बीच में पृथ्वी आकाश का भेद है। चिता तो मुर्दे को जलाकर भस्म करती है, लेकिन चिन्ता तो जीवित रहते ही मनुष्य को चकना-चूर करे। चिता तो एक बार मुर्दे को जलाती है, किन्तु चिन्ता तो रात दिन जलाती रहती है।

चिन्ता वाला मनुष्य कदापि नहीं समझता। चिन्ता करने से हाथ क्या आता है? व्यर्थ ही स्वयं को हानि में डालना है। सचमुच चिन्ता करने से कुछ प्राप्त होना नहीं है। सूर्य के सामने अंधकार होना ही नहीं चाहिए। हम आनन्द रूप हैं तो फिर दुःख किसका करें?

दारा और सिकन्दर जैसे महा बलवान योद्धे बादशाह भी दुनिया के तख्ते से जाते रहे। सिकन्दर बादशाह ने अन्तिम समय में शाही घोषणा की थी कि मरने के पश्चात् मेरे दोनों हाथ कफन से बाहर निकालना, तो भले दुनिया देखे कि मैं इस फानी (नाशवन्त) दुनिया से कुछ भी साथ नहीं ले जा रहा।

---

* २ व ३ मई १९६३ को श्रीकृष्ण गौशाला आगरे में किया गया प्रवचन।

दुनिया में एक मुसाफिर, दिन चार जिन्दगी है;
कर जीव की भलाई, मकसद फकत यही है।
दुनिया के ये नजारे, लगते जो तुझको प्यारे;
है छल कपट को रचना, मिथ्या ये जान सारे।

सदैव भलाई के कार्य कीजिए- दूसरों की भलाई में तुम्हारी भलाई है। किसी की भी बुराई न सोचिये। बबूल के पेड़ को पानी दिया जायेगा तो अवश्य उस पेड़ से बबूल के कांटे ही उत्पन्न होंगे। किन्तु अंगूर की लता को पानी दिया जाएगा तो अवश्य उस लता से अंगूर ही उत्पन्न होंगे। जैसा कर्म किया जाएगा, वैसा ही फल उत्पन्न होगा।

दुनिया अजीब बाजार है, कुछ जिन्स यहां की साथ ले,
नेकी का बदला नेक है, बुरे से बुरी बात ले।
मेवा खिला तो मेवा मिले, आराम दे तो आराम मिले,
कलियुग नहीं, कर युग है, यहां दिन को दे और रात ले।

क्रोध न कीजिये- भूल कर भी किसी पर क्रोध न कीजिये। सदैव आनन्दित रहो। अपना चेहरा हंसमुख रखो। सबसे हंसकर बोलो। अपना हृदय पवित्र रखो। यदि तुम्हारे मन में कोई घबराहट हो तो तत्काल अपने कमरे में जाकर कड़ा लगाकर, बड़े ठहाके लगाओ। ऐसा करने से तुम्हारे मन की परेशानी दूर हो जाएगी।

याद और दया- सर्वदा परिपूर्ण परमात्मा को दिल में याद करते रहो। कदापि उस सच्चिदानन्द को हृदय से भुलाओ नहीं। 'याद' शब्द यदि उलटा लिखेंगे तो 'दया' हो जाएगी। तुम प्रभु को याद करोगे तो फिर स्वतः उस दातार की आपके ऊपर दया की दृष्टि होगी। बिजली के बटन दबाने से क्या होता है? तत्काल सब अंधकार नष्ट हो जाता है।

चेत जाओ, चेत जाओ, रात दिन सजग हो जाओ।

श्री गुरू तेग़ बहादुर गुरु ग्रन्थ साहब में फरमाते हैं:

चेतना है तो चेत ले, निश दिन में प्रानी,
छिन छिन औध जात है, फूटे घट जिउ पानी।

(१) हर गुन काह न गावहु, मूर्ख अज्ञाना,
झूठे लालच लाग के, नहि मरण पछाना।

(२) अजहूं कछु बिगड़ियो नहीं, जो प्रभु गुन गावे,
कह नानक तिह भजन ते, निर्भय पद पावे।

हे प्राणी! करना है तो अभी कर लो। चार दिन उस प्रभु का चिन्तन करता रह।

जिस प्रकार टूटे हुए मटके से पानी बूंद बूंद कर टपकता रहता है और अन्त में मटका खाली हो जाता है, उसी प्रकार तुम्हारा जीवन भी प्रति दिन समाप्त हो रहा है। साहब समझाते हैं कि हे मूर्ख मनीराम! तुम हरि के गुन क्यों नहीं गाते हो? झूठे विषय भोगों में डूबकर तुमने मौत को ही भुला दिया है। अभी भी समय गया नहीं है, तुम्हारा कुछ बिगड़ा नहीं है। अभी भी तुम हरि के गुण गा सकते हो। यही भजन तुम्हें काम आएगा। भजन करने से ही तुम्हें निर्भय पद की प्राप्ति होगी।

अन्त समय- हमें रात दिन मनीराम को समझाना चाहिये, नहीं तो अन्त समय पछताना पड़ेगा। आगे चलकर हाय हाय करने और आंखों से आंसू बहाने से तो अच्छा है कि अभी ही इस चलते हुए समय में कुछ करलें, अन्त समय में तो हमारा कोई उपाय चल नहीं सकेगा।

गुरू साहब भी स्पष्ट वर्णन करते हैं:-

करणो हो सो ना कीओ, पड़ियो लोभ के फन्द,
नानक समो रम गयो, अब क्यों रोवत अन्ध?

अवसर– सब काम अवसर (मौके) पर होता है। २ बजे रात को चोर चोरी करके भाग सकता है। परन्तु दिन को लोगों के सामने चोरी करके भागना उसके लिए कठिन है। सरदी में गेहूं और गर्मी में जवार बोई जा सकती है। किन्तु गर्मी में गेहूं और सरदी में जवार नहीं हो सकती। यदि बोई जाएगी तो अच्छा फल नहीं देगी। सब काम अवसर पर ही होता है। ऋतुएं किस तरह मौसम बदलती रहती हैं। चौमासा भी यथा अवसर आरम्भ होता है। वृक्ष भी ऋतु के अनुसार फल देते हैं। विद्यार्थी भी आरम्भ में बेपरवाह रहेगा तो वार्षिक परीक्षा में कभी विजय प्राप्त नहीं कर सकेगा। अत: हमें भी अवसर गंवाना न चाहिये।

यदि अब जवानी में कुछ नहीं करेंगे, तो पीछे बुढ़ापे में जब पराधीन बनेंगे, हड्डे पैर चलने से चूकेंगे, हड्डियां निर्बल हो जाएंगी, स्वास्थ्य ठीक नहीं रहेगा, तब उस समय हमारा क्या पुरुषार्थ हो सकेगा? तब तो हाय हाय करने के अतिरिक्त कुछ न होगा। एक ने कहा है:-

१. क्यों न जपा राम, जब देह में आराम था?
क्यों न किया दान, जब घर में सामान था?
क्यों न किया वापार, जब खुली रुस्तम बाजार?
जब होवे हरतार, तब सौदा याद पड़ा।

२. इस जग विच आयके, जे न भजो हरि नाम,
खाना पीना पहनना, होवन सब हराम।

आश्चर्य का आश्चर्य–

"जब जाने तब छूटा झगड़ा, हैरत की हैरानी है"

फूलों में शोभा की झलक है, वह अन्य कुछ नहीं, केवल अतिरिक्त भाति और प्रिय का ही जलवा है। उनमें आत्मिक तेज की छाया है, इसलिये वे शोभा दे रहे हैं। मिट्टी कैसे भी विभिन्न रूप मटके, घड़े, कुत्ते आदि ग्रहण करे, किन्तु मिट्टी के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

शक्कर (चीनी) से कई नाना प्रकार की मिठाइयां बनें परन्तु है शक्कर ही। सोने में से अनेक प्रकारों के विभिन्न नामों एवं रूपों वाले आभूषण बनें, परन्तु है सोना ही। लहरें और बुदबुदे भी तो पानी और समुद्र से भिन्न नहीं है। उनके नाम और रूप भले ही भिन्न हैं।

चावलों में चीनी अथवा गुड़ डाला जाता है तो उसे "ताहिरी" नाम दिया जाता है और चावलों में मिठास भी आ जाता है। नाम चीनी अथवा गुड़ के कारण उसका बदलता है और मिठास भी चीनी अथवा गुड़ के कारण उसमें रहता है, परन्तु वास्तव में तो चावल ही हैं।

इन सब बातों में हमने नाम रूपों का खेल देखा, असली वस्तु तो असली ही रही थी। यह हैरत की हैरत समझो। तुम क्या हो? उसकी वास्तविकता को जानो। तुम तो नाम रूप से परे अस्ति, भाति, प्रिय हो। सत् चित् आनन्द स्वरूप हो। अज्ञान की अवस्था में ही तो द्वैत दिखाई देता है। ज्ञानी को तो एक ही दृष्टिगोचर होता है। दूसरा कुछ नहीं। वह तो अनेकता में भी एक ही का दर्शन करता है।

एक व्यक्ति के पास दो खिलौने थे। एक गणेश का और चूहे का। दोनों समान वजन के थे। दोनों सोने के बने हुए

थे। परन्तु गणेश का सोना अच्छा नहीं था और चूहे का खरा। वह व्यक्ति वे दोनों खिलौने एक सुनार के पास ले आया कि उनका मूल्य बतायें। सुनार ने वे कसौटी पर लगाकर गणेश का मूल्य ३०० रुपये और चूहे का ५०० रुपये बताया। वह व्यक्ति आश्चर्य में पड़ा और पूछा कि ऐसा क्यों? चूहा है गणेश की सवारी, उसका मूल्य अधिक कहते हो और गणेश गणपति का कम! दोनों हैं तो सोने के और उनका वजन भी समान हैं। सुनार ने कहा कि मेरा मूल्य मूर्ति का नहीं, अपितु सोने का है। खिलौने वाले की दृष्टि थी रूप पर, परन्तु सुनार की सोने पर। ज्ञानी की दृष्टि भी तो सदैव सत् चित् आनन्द रूप ब्रह्म पर ही होती है। उसे अन्य सत्ता दृष्टिगोचर नहीं होती।

भोला बाबा कहते हैं :

तू एक अव्यय शान्त निर्मल स्वच्छ चिदाकाश है।
अज्ञान तुझ में है नहीं, नहीं भ्रांति अध्यास है।
राजस नहीं, तामस नहीं, तुझ में रंचक सत्त्व है।
निर्गुण, निरामय एक रस अद्वैत है, एक तू ही तू है।

एकता– एकता में ही आनन्द है। एक-एक कुश-मूंज को आप तोड़ सकते हैं, बकरी खा सकती है, किन्तु २०-२५ को मिलाकर बटा जाय, वह बटकर रस्सी बकरी को तो क्या, परन्तु शेर को भी बांध सकती है। शहद की मक्खियां आपस में मिलकर कितना न शहद इकट्ठा करती हैं। सब्जी में भी देखो कि पालक, धनिया, मिर्च मसाले आदि पड़ते हैं तो कितनी न स्वादिष्ट बनती है। माला में भी कितने मनकों का मेल है, तब तो वह आदमी अथवा देवता के गले में पड़कर शोभा देती है। सेना में भी सैनिकों का आपस

में मेल है। इस मेल के कारण ही उनमें शक्ति आती है। आटे, घी और चीनी के मेल से हलुआ बनता है। अनेक बूंदों के मेल से वर्षा पड़कर शीतल करती है। मकान में भी ईटों, मसाले, सीमेन्ट, पत्थर आदि का मेल होता है। अथाह सागर में भी अनेक नदियों के पानी का मेल है। वस्त्र अनेक तागों के मेल हैं। वृक्षों के मेल से बन बनता है। पत्थर बजरी के अनेक जर्रों का मेल है। पुस्तक पृष्ठों का मेल होता है। मनुष्य भी अनेक इन्द्रियों और अंगो का मेल है। यह सब एकता का खेल है। एकता में रहोगे तो सदैव सुखी रहोगे।

(६५)

भूल न जाओ*

देखा मुख हुआ सुख– आप वैशाखी जैसे महा पवित्र पर्व पर यहां दरबार में किसलिए इकट्ठे हुए हो? आपको सूचना दी गई है कि आज लीलाशाह यहां आएंगे और कथा करेंगे। आपने भी सोचा कि जाकर लीलाशाह के दर्शन भी करके आएं। देखा मुख, हुआ सुख। दर्शन करने से दुःख ही दूर! यह कैसी न मूर्खता।

बराबर स्वीकार किया जाता है कि आपको दर्शन करने की अभिलाषा थी और दर्शन करने से आपके मन की तृष्णा पूरी हुई। किन्तु वह सुख, जिस सुख की आपको आवश्यकता है। वह केवल दर्शन करने से आपको नहीं मिलेगा। चित्त की शान्ति कोई साधारण बात नहीं है। "बिन कमाई नानका मुझे साधुओं जैसा कर।" वह होने वाला नहीं है।

एक मजदूर बिचारा देखो कि वह मजदूरी के लिए कितना न परिश्रम करता है? कितने न कष्ट सहन करता है। भात खाना भी कोई आसान काम नहीं है। भात तैयार करने के लिए क्या नहीं चाहिये? अग्नि, लकड़ी, पानी, देगची और घी की आवश्यकता होती है। चाहे सब सामान क्यों न हो, तो भी यदि स्वयं हाथ नहीं चलाएंगे, केवल देखते रहेंगे और चाहेंगे कि भात तैयार हो तो कदापि तैयार नहीं

* १३ अप्रेल १९६५ ई. में आगरे में काला बाग मोहल्ले साधु बेला में किया गया प्रवचन।

हो सकेगा। भात तैयार भी किया जाय, किन्तु असावधानी से यदि केवल नमक उसमें अधिक पड़ गया तो पूरी देगची जहर हो जाएगी, यदि नमक डालना भूल गया तो भोजन ही अस्वादिष्ट हो जाएगा।

बिजली भी तब जलती है, जब बटन को दबाया जाएगा और विभिन्न प्रकारों के बल्ब लगाएंगे तो समस्त परिश्रम ही निष्फल? व्यय ही व्यर्थ। वही अंधकार लगा रहेगा। ठीक उसी प्रकार साधु सन्तों के दर्शन करते रहेंगे, कथाएं सुनते रहेंगे। किन्तु उसके अनुसार आचरण नहीं करेंगे तो फिर इतने संघर्ष करने से क्या लाभ?

भगवान को खूब स्मरण करो- आज कैसा पवित्र दिन है। भगवान को खूब याद कीजिए। भोगों से हटाकर, भगवान में लगाओ। भोगों से भगवान कभी नहीं मिलेगा। भोगों को छोड़ दीजिये। भोग में रोग है। आत्मिक, मानसिक और शारीरिक शक्ति भगवान से मांगो।

भगवान बाहर से नहीं फेंकेगा। केवल भगवान को अपना करो। उसकी शरण में जाओ तो बेड़ा पार। अग्नि के जितना निकट बैठोगे, उतनी अधिक गर्मी आपको लगेगी और आप जितना अग्नि से दूर रहेंगे, उतनी अधिक सरदी अनुभव होगी। विषय विकारों रूपी अग्नि से अपने को बचाओ, खूब भगवान को याद करो।

महानता कैसे प्राप्त हो– कष्टों के समय में धैर्य धारण करना चाहिये। दुःख में धैर्य और सुख में शुक्र अन्तःकरण में बहुत शान्ति लाते हैं। सागर की भांति गम्भीर होकर रहना चाहिये। सबसे प्यार और मधुरता से वर्ताव करना चाहिये।

हमारे बोलने से मित्र प्रसन्न हुआ तो क्या हुआ, किन्तु शत्रु भी हमारे बोलने से प्रसन्न हो तो ठीक। कोशिश करके नम्र और अभिमान रहित होकर चलना चाहिये। परमात्मा की कृपा से धीरे-धीरे इस महानता के निकट होते जाएंगे।

उत्तम कौन– स्टेशन पर टिकट पूछा जाता है और जाति पाति। ईश्वर के पास भी हमारे कार्य को देखा जाता है और न हमारी जाति पाति को। सोना मिट्टी से, कमल का फूल कीचड़ से, मोती सीप से, शहद मक्खियों से, रेशम कीड़ों से उत्पन्न होते हैं। गुणों से मनुष्य उत्तम होता है और न जाति से।

आत्म पद– आत्म पद सब पदों में ऊंचे में ऊंचा पद है। आत्म पद की प्राप्ति के लिए, केवल चित्त को शान्ति चाहिये।

जीव की बृत्ति जैसी बदलती है, वैसा वैसा रूप हो जाता है। जिस पुरुष को संसार के पदार्थों की इच्छाएं नहीं हैं तथा भाव अभाव से छूट गया है, वह उत्तम पद को पाता है।

समाप्त